इस बहाने

आज हम जिस वातावरण में जी रहे हैं, वह अपने-आप में व्यंग्य है। जीवन में सहजता और सरलता जैसे लुप्त होती जा रही हैं। जहां देखो वहीं हमें टेढ़ापन-तिरछापन दिखाई देता है और यह भंगिमा, यह वक्रता मुझे बार-बार झकझोरती है।

कई बार लगता है, सारा युग हँस रहा है। इस हँसी के मूल में अवसाद का एक पैनापन है। शायद इसीलिए आज का साहित्यकार व्यंग्य का नश्तर लेकर सामाजिक विसंगतियों और विद्रूपता के घावों की चीर-फाड़ कर उसकी मवाद निकालने में प्रयत्नशील है। व्यंग्य को एक स्वतन्त्र विधा के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। मेरा प्रयास भी इस विधा को आत्मसात् करते हुए मन के भावों को कटु यथार्थ के धरातल पर अभिव्यक्त करना रहा है। मेरे व्यंग्य लेखों में घर-परिवार और राजनीति के परिप्रेक्ष्य में समाज और संस्कृति के बदलते मूल्य उभरकर सामने आते हैं।

मेरे व्यंग्य कपोल कल्पना नहीं बल्कि अपने परिवेश के सामाजिक सत्य हैं। इनके पात्रों और घटनाओं की यदि आपको अपने जीवन और परिवेश में यथार्थ के धरातल पर अनुभूति होने लगे तो समझूंगा, मेरा प्रयास सफल है।

मैंने इन व्यंग्यों में प्रतीकों और बिम्बों का सहारा भी लिया है। ये प्रतीक अभिधा की जमीन से सिर उठाकर लक्षणा और व्यंजना की ऊंचाइयों को छू लें, यह मेरा प्रयास रहा है। यह प्रयास कितना सार्थक है, आप जानें। मैं तो इस पुस्तक के बस कुछ ऐसा कहता है —

"वह कुर्सी देखते ही उस पर छलांग लगाकर जा बैठता है और मेरे लाख मना करने पर भी उतरने का नाम नही लेता। आजकल यह कुर्सी पर बैठता है। कुर्सी पर सोता है। कुर्सी पर खेलता है और कुर्सी पर ही भौंकता है।..."

"मैंने देखा कि टिकिट-खिड़की के पास जितने भी लोग खड़े हैं। सबने खिडकी के पास अपनी-अपनी लाइन बना रखी थी। छोटी-छोटी लाइनें। और मजे की बात यह कि एक लाइन मे सिर्फ एक ही आदमी।..."

"मैं तो उधार के रूप मे सिर्फ नोट ही मागता हू। लोग तो साइकिल, स्कूटर, फ्रिज, कूलर, टेलीविजन ही नही, बीवी तक उधार मागने मे नही हिचकते।...उधार के मामले मे नेताओ का नजरिया कुछ और ही है। इन्हे नोट नही, वोट चाहिए और इसी वोट के लिए ये न जाने..."

इस पुस्तक के सपादन एव प्रकाशन-कार्य मे मुझे आदरणीय बधुवर डॉ० मनोहरलाल जी (अध्यक्ष : हिन्दी-विभाग, श्रीराम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली) का विशेष सहयोग एवं मार्गदर्शन मिला है। इसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हू।

भाई स्वयंप्रकाश, रघुनंदनप्रसाद शर्मा, सुभाष एव जवाहर चोपड़ा के सहयोग के बिना इस पुस्तक का सुचारु रूप बन पाना सम्भव न था। मैं औपचारिक धन्यवाद देकर इन महानुभावो के स्नेह को कम नही करना चाहता।

— दीनदयाल शर्मा

पुस्तकालयाध्यक्ष,
राजकीय माध्यमिक विद्यालय,
हनुमानगढ संगम-335512
रंगपर्व, 1987

क्रम

अहिरावण की वापसी 11
शादी करने का जमाना 17
झूठा कहीं का 23
कसम विदाई 28
धंधे से धंधा 33
उधारबाज़ी 37
पछतावा अपनेपन का 40
दास्तान मकां यकलम गुड 45
गुल रेडियो-मरम्मत के 52
पिल्ले की पूछ पर रिसर्च की सनक 58
साहित्यकारों के चेहरे 60
गुल अख़बारनवीसी का 63
बुढ़ापे को नमस्कार 67
कुत्ते पालने का शौक 73
राज़ की बात 78
रामलाल की वापसी 81
सुख : एक अदद पिक्चर का 84
मूड ! मूड !! मूड !!! 89
कर्ज़े का चस्का 94
बाज आए ऐसे दोस्तों से 96
तेल की ख़ातिर 100
किरायेदार की पाती 104
मैं उल्लू हूं 110

अहिरावण की वापसी

सुबह के ८ बजे थे। मैं घर पर बिस्तर में दुबका पड़ा था। सर्दी के कारण बिस्तर से निकलने की इच्छा नहीं हो रही थी।

कुछ देर तक बीते दिन की गतिविधियों पर दृष्टि डालते हुए आज के सब कार्यों का प्लान बनाने लगा तो अचानक याद आया कि सेठ जी ने आज मुझे मानगढ़ जाने का आदेश दिया था।

समयाभाव को देखते हुए मैंने रजाई को फौरन इस तरह फेंका जैसे वह रजाई न होकर कोई जहरीला सांप हो। पास ही खड़ी मेरी गृहमन्त्री इस हरकत को देख रही थी। मैं पल भर के लिए झेंप गया। मैंने खिसियाते हुए पत्नी से कहा था, "भाग्यवान! मेरा मुंह क्या देख रही हो चाय लाओ ना जल्दी से।"

मुस्कराती रसोईघर में घुस गई।

कुछ ही देर बाद मैं बिस्तर में बैठा 'चा' की चुस्कियां ले रहा था। आज का प्लान मेरे दिमाग में फिर घूमने लगा। चाय खत्म करके सिरहाने रखे विल्स नेवीकट के पैकेट से सिगरेट निकाली और सुलगाकर लंबे-लंबे कश खीचे। तभी टेलीफोन की घंटी ने मेरा ध्यान आकर्षित किया। मैंने रिसीवर उठाकर कान के पास लगाया।

"हैलो" उधर से आवाज आई।

फोन पर सेठ जी बोल रहे थे। मैं बोला, "सेठ जी, गुड मार्निंग।"

सेठ जी ने प्रत्युत्तर में नमस्कार कहा और बोले, "भैया, आज रामलाल के पास मानगढ जाना है। अपने वहा प्रताप केसरी का कार्यालय तो जानते ही हो। जक्शन मे बस स्टैंड के पास विक्की रेडियोज पर है।"

मेरी ओर से कुछ उत्तर न पाकर सेठ जी बोले, "क्या बात है, अभी बिस्तर में लेटे हो?"

सेठ जी का सवाल सुनते ही मैं चौका। मैंने कहा, "नही· ·नही। फिर" क्रेडिल और रिसीवर को बडी पैनी दृष्टि से देखा कि कही ये जापान वाला टेलीफोन तो नही है जिसमे बात करने वालों के चित्र भी दिखाई देते हैं। शक दूर करने के बाद मैंने उत्सुकतावश सेठ जी से कहा, "जी बस पाच मिनट।"

ठिठुरती सर्दी मे नहाने का मूड नही बन सका। वैसे समय भी कम था। मैंने फटाफट 'ड्राइक्लीनिंग' की। कपड़े बदले। पैंट की जेब मे पाच-सात कोरे कागज घुसेडे। पेंसिल कोट की जेब मे यथावत् थी। आदमकद आइने मे अपने-आपको देखते हुए बालो मे कंघा उल्टा-सीधा मारने लगा। ससुराल से मिला हुआ सैंटेड रूमाल पत्नी ने मेरे हाथों मे थमाते हुए पूछा, "आज सुबह-सुबह कहा चल दिए नाथ?"

मैं बोला, "प्रिय ! शुभ काम के लिए जाऊं तो टोका मत करो।"

"फिर भी बता तो दो।" उसने मेरे कंधे पर प्यार से हाथ रखते हुए पूछा।

"मैं आज···। क्या करोगी पूछकर?" मैंने कहा।

"नही, बस मैं तो यों ही पूछ रही थी।" पत्नी बोली।

मैं उस वक्त मजाक के मूड में था। बोला, "पद्मिनी कोल्हापुरी से मिलने।"

पत्नी ने कुछ नाराजगी भरे स्वर में कहा, "अजी आप बड़े वो हैं। बातें बनाना तो कोई आपसे सीखे। प्लीज बताओ ना, कहां जा रहे हो?"

"क्यूं" मैंने पूछा।

"आज मुझे डर-सा लग रहा है, क्योंकि सुबह चार बजे से मेरी बायीं आंख फड़क रही है।" पत्नी ने गंभीर होते हुए कहा।

मैं बोला, "भई वाह! क्या बात कही है। भागवान, आंख है इसलिए फड़क रही है। ख्वामखा बिना बात के अपने शरीर को कुढ़ा रही हो! शरीर का कोई अंग फड़के या धड़के, इसमें अपन क्या कर सकते हैं! वहम मत करो। वहम की कोई दवा भी नहीं होती। समझी!"

"मैं तो उसी दिन समझ गई थी जिस दिन आपसे मेरी शादी हुई थी लेकिन आप नहीं समझोगे।" पत्नी रोष व्यक्त करती हुई बोली।

मैंने उसके गाल पर हल्की-सी थपकी लगाते हुए कहा, "नाराज क्यों होती हो मेरी जान। तुम तो मेरे कलेजे का टुकड़ा हो।"

"रहने दो, बहुत हो गया। शादी से पहले कहते—मेरी जान तुम मेरे दिल का टुकड़ा हो और आज ... । न जाने क्या कहोगे। पत्नी

पत्नी मेरी बात को बीच मे काटते हुए बिफरकर बोली, "खबरदार, जो मुझे ऐसा-वैसा समझा । क्या मैंने यही सुनने के लिए तुमसे शादी की थी? घर से भागकर नही आई हू । अग्नि को साक्षी मानकर सात फेरे खाए हैं और वह भी भरे-पूरे समाज के बीच । तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई ऐसा कहने की । मि० अहिरावणिये ! मुझको अपने जैसा ही समझ रखा है क्या ?"

मैं अपनी गृहमन्त्री का यह चंडी-रूप देखकर असमनस मे पड़ गया। उसके मुह से थूक उछलकर सीधा मेरे चेहरे पर गिर रहा था। ऐसा लग रहा था जैसे बादलो की तेज गडगडाहट मे हल्की बूदाबादी हो रही है। मैं गर्दन झुकाए अपराधी की भाति चुप रहा और पत्नी पर चढ़े गुस्से के बुखार को उतारने के बारे मे सोचता रहा ।

वह मेरे कुछ और नजदीक आ गई और अपनी साड़ी का पल्लू संभालती हुई बोली, "अब जनाब की बोलती कैसे बद हो गई। चेहरे पर पसीना'क्यो छूट रहा है ! जवाब दो ! अब जवाब क्यो नही देते ?"

गुस्सा मुझे भी आ रहा था, लेकिन मैंने सोचा, "पत्नी की बाईंआख फड़कने का प्रमाण देना ठीक नही है। उसकी बात का मुझ पर कतई असर नही हो रहा था। घर की मालकिन वह थी तो कम मैं भी नही था।"

पत्नी हॉकी के कमेंटेटर की भाति उल्टा-सीधा बके जा रही थी। मैं फिर भी चुप रहा, क्योकि मेरे दिमाग मे उसका गुस्सा ठडा करने का आइडिया घूम रहा था। मैं चेहरे पर गभीरता लाते हुए पत्नी की आखो में अपलक झाकता रहा। वह कुछ देर तक तो बोलती रही, फिर मेरी स्थिति देखकर शात हो गई जैसे उसे कोई साप सूघ गया हो। दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर मुझे कुछ परेशानी की झलक दिखाई दे रही थी।

मैं मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हो रहा था कि तीर निशाने पर लगा। एकटक देखते-देखते मेरी आखें थक गईं और मैंने पलको को गिरा दिया। मैं पत्थर के बुत की भाति बिस्तर पर बैठा-बैठा अचानक ही लुढक गया।

पत्नी मेरे पास आई। मेरे दाए हाथ की नब्ज टटोलती हुई भगवान् से मेरे लिए प्रार्थना करने लगी, "हे भगवान् ! ये अचानक क्या हो गया मेरे प्रियतम को।"

मेरा मन खुशी से बल्लियों उछलने लगा। मैंने भगवान् से मन-ही-मन कहा, "भगवान्, औरत के चरित्र को तो तुम भी नहीं जान सके फिर मैं कैसे जान पाऊंगा।"

पत्नी मेरे दिल की धड़कन को देखते हुए मेरे गालों को हौले-हौले थपथपाती हुई बोली, "प्राणनाथ, मुझे माफ कर दो। गुस्से में न जाने मैं आपको क्या-क्या कह गई। यह अचानक क्या हो गया है आपको!"

फिर वह बाथरूम की तरफ गई। मैंने एक आंख को खोलकर उसकी ओर देखा। वह मटके से पानी का गिलास भरकर मेरी तरफ ही आ रही थी। मैंने अपनी अधखुली एक आंख को फिर बंद कर लिया।

पत्नी ने पानी का गिलास मेरे मुंह के पास लगाया तो मैंने अपने जबड़े को बड़ी मजबूती से भींच लिया। मेरी यह स्थिति देखकर उसका धैर्य छूट चुका था। वह फूट-फूटकर रोने लगी थी। पल भर बाद [illegible] पड़ोसियों को आवाजें देने लगी, "अरे बापू, [illegible] [illegible] [illegible] और कोई आओ, मेरे भगवान् को बचाओ। अब मैं कभी भी इनसे झगड़ा नहीं करूंगी। कभी भी गालियां नहीं दूंगी। ये चाहे कहीं भी जाएं। मैं अब कोई सवाल इनसे नहीं करूंगी कि कहां जा रहे हो।"

मिश्रित नजरो से इस तरह घूरने लगी जैसे मैं स्वय अहिरावण न होकर उसका कोई भूत हू।

वह मुझे एकटक घूरे जा रही थी। थोड़ा मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए मैं पत्नी के बायें हाथ को अपने हाथ मे लेता हुआ बोला, 'मैं सब जानता हू जो तुम नाटक कर रही हो।" मेरे इतना कहने पर उसमे कोई प्रतिक्रिया नही हुई। फिर मैंने उसके चेहरे को हथेलियों मे लेकर झिझोडा तो उसने अपनी आखें झपझपाईं और रोती हुई मेरे सीने से लग गई। उसकी आखो से पश्चात्ताप के आंसू झरने की तरह बह रहे थे। मैंने उसकी पीठ हौले से थपथपाई और धीरे से बोला, "बीती बातो को भूल जाओ। आज मानगढ जाना कैंसिल। अब तैयार हो जाओ। अपन भी आज आदर्श सिनेमा मे जादूगर शकर सम्राट् का प्रोग्राम देखने चलेंगे।"

गृहमश्री मेरी आखो मे झाकती हुई थोड़ी-सी मुस्करा दी और मैं कदम बढाता हुआ उसके साथ घर लौट आया।

शादी करने का फ़साना

शादी का नाम लेते ही एक-दो कुंवारों को छोड़कर अन्य सभी कुंवारों का दिल बल्लियों उछलने लगता है। हमारा हाल भी कुछ ऐसा ही था। मुझे शुरू-शुरू मे केवल शादियां अटैंड करने का शौक था। घोड़ी पर सजा दूल्हा, विशेष परिस्थितियो मे घोड़े पर सजा दूल्हा भी चल सकता है, खूब सारे गाजों-बाजों के साथ रंग-बिरंगी महकती पोशाकें पहने बराती पटाखे बजाते, अनार चलाते, हो-हल्ला करते और नाचते-गाते वधू-पक्ष के घर के आगे पहुचते-पहुचते कुछ और जोर पकड़ जाते। फिर वधू-पक्ष की तरफ से बरातियो की सेवा, सेवा मे मेरा तात्पर्य जलपान और भोजनादि से है, कृपया इसे अन्यथा न लें। इसी सेवा के दौरान खाने-पीने मे बरातियों द्वारा सराहना कम और मीन-मेख ज्यादा निकालना और कुछ अजीबोगरीब हरकतें करना। मैंने देखा कि सभी शादियां लगभग एक जैसी ही होती है। कोई विशेष अन्तर नही देखा।

बैंड-बाजों की धुन कभी मेरे कानों मे पड़ती या फिर कभी किसी शादी म शामिल होता तो मैं भी कल्पनालोक मे विचरण करने लगता और घोड़ी पर बैठे रूमाल से मुह ढके दूल्हे की जगह अपने-आपको कई बार देख चुका था मैं। लेकिन फिर यथार्थ के धरातल पर उतरते ही मन को यह कहकर तसल्ली देता—'नदी किनारे बैठे है, कभी तो लहर आएगी।' और फिर एक दिन वर्षो बाद होते हमारी शादी की बात भी तय हो गई। बस, तय होने की देर थी। शादी होने मे कोई देर न लगी। [illegible] जाने

मेरे ससुराल वाले मेरे मन की बात भांप गये थे या उन्हे खुद को कोई जल्दी थी।

खैर, शादी हुई तो दुल्हन घर आयी। पाच दिन···दस दिन···महीने-दो महीने ···सब कुछ ठीक-ठाक चलता रहा। लेकिन एक दिन पत्नी जी की कजूसी और मूर्खता के कारण घर मे ऐसा 'साडी-काड' हुआ कि मेरे लिए शादी बहुत बडी समस्या हो गई। मैंने सोचा भी नही था कि शादी जैसी एक छोटी-सी समस्या को हल करने के लिए मुझे बडी-बडी अनेक समस्याओं का सामना करना पडेगा। मैंने देखा कि बेचारी पत्नी जी 'चौका' लगाना भी नही जानती। यह देखकर तो मेरे 'छक्के' ही छूटने लगे।

शादी के शुरू-शुरू की बात है। जब हमारी वह यानी हमारी धर्मपत्नी जी गणगौर के त्यौहार पर पति की लबी उम्र (गर्दन नही), हा, तो लंबी उम्र की कामना करने के लिए अपने पीहर चली गई और महीने भर बाद मेरे पीहर लौटी तो आते ही मेरे चरण-कमल छुए और सामने तीन साडिया रख दी। मैंने साड़िया देखकर कहा, "अच्छी है।"

वह खीसे निपोरती हुई बोली, "आपको कौन-सी पसंद है?"

मैंने हसते हुए कहा, "जी नही, मुझे तो कोई भी पसद नही, क्योकि मैं साडिया नही पहनता।"

वह गोभी फूल की मानिंद खिलती हुई और एक कर्जदार की तरह हँसती हुई बोली, "मैं आपके लिए नही, बल्कि माता जी के लिए बात कर रही हू। गणगौर पर घर जाकर आई हू न···इसलिए इन्हे साडी देना जरूरी है।"

मैंने कहा, "जो साडी मा के लिए लाई हो···वही दे दो···मैं अब क्या बताऊ? और जनाब आप मानेंगे नही, त्रिया-चरित्र मैं तब भी नही समझा था। हमारी श्रीमती जी मा के पास अपनी दो और साडिया ले गई। वह तीनो साडिया एक साथ ले जाकर वहा उपस्थित हो गई थी। होना वही था, जो मैं पहले ही जानता था। यानी मा को वह साडी पसद नही आई, जो कि उनके लिए लाई थी। मा ने हँसते हुए कहा, "मुझे तो यह साड़ी दे बहू, जो तू अपने लिए लाई है।"

बहू भी कम नही थी। तीनों साडियां समेटकर अपनी सदूक मे रख

दी और मुझसे शिकायत करने लगी, "मा को वह साडी पसद नही आई।" मैंने कहा, "जो दो साडिया और नेकर आई हैं, उनमे से कोई पसद की होगी ?" पत्नी जी चुप हो गईं। उनकी चुप्पी मैं समझ चुका था। घंटे भर तक समझाया, पर उनके कानो पर जू तक नही रेंगी। मैंने बहुतेरा समझाया, "डार्लिंग, तुझे जिंदगी साडी के साथ काटनी है या मेरे साथ ?" लेकिन वह टस से मस नही हुई।

उधर मा से मैंने बात की तो मा आखो मे आसू लाते हुए बोली, "बेटा, मैंने लाल जनी है···कोई पत्थर नही जना ! बहू खुद तो बढिया-से-बढिया साडी पहने और मुझे घटिया साडी दे !"

मैंने धीरे से कहा, "मा, जो वह दे रही थी, वही ले लेनी।"

तो मा सफाई देती हुई बोली, "मुझे साडी नही चाहिए बेटा। पाच-पाच बेटे है मेरे लिए साडियों की क्या कमी है। लेकिन क्या बहू मुझे इतना भी नही कह सकती कि माता जी, जो आपको पसद हो, वह साडी ले लो। क्या वह ऊपरी मन से इतना भी नही कह सकती ?" मैं दोनो तरफ की दलीलें सुनकर चुप रहा। तब मैं समझा था कि औरत की सबसे बडी कमजोरी केवल साडी ही होती है। साडी के अलावा कुछ भी नही।

केवल हमारी पत्नी जी ही नही, बल्कि हमारे ससुराल वाले बेचारे वास्तव मे बहुत अच्छे थे। वे जानते थे कि परपरा के अनुसार किसे क्या देना है। किसे बिना दिए काम चल सकता है। उनके पास योग्यता मापने का एक सटीक पैमाना था, जैसे दूध मापने का होता है। वे बस मौका और सामने वाले की हैसियत देखकर ही काम करते थे। चाहे जवाई हो या जवाई का पिता, जवाई का भाई हो या साथी। यदि सामाजिक परपरा के अनुसार कोई चीज देनी ज्यादा ही जरूरी होती तो वे अपने पैमाने के अनुसार अतर जरूर रखते। तब उनकी मानसिकता के लोग देखते ही समझ जाते कि फला चीज किसके लिए है। चलिए छोडिए ये तो अपनी-अपनी समझ की बात है।

इन छुट-पुट घटनाओ के साथ धीरे-धीरे घर का बोझ ज्यो-ज्यो मेरे सिर पर चढता गया, शादी का बुखार उतरता चला गया। शाम को थका-हारा जैसे ही मैं अपने स्कूल से आता तो फरमाइशें सुनने को मिलती,

"अजी सुनते हो !"

मैं मरी-सी आवाज़ निकालता, "क्या बात है ?"

तो वह नज़दीक आकर मेरे बुशर्ट के बटन को इधर-उधर करते हुए मिश्री जैसी मीठी आवाज बनाकर कहती, "भाई साहब और भाभी जी आज दोपहर को पिक्चर देखकर आए हैं। अपन भी चलें।"

मैं कहता, "अपन भी तो अक्सर पिक्चर देखते ही रहते हैं और फिर भाई साहब के तो नौकरी के अलावा और भी कई काम हैं। इनकी और मेरी तनख्वाह में भी तो काफी फर्क है।"

तो वह मेरे हाथों को अपने हाथो मे लेकर होले-होले सहलाती हुई कहती, "तनख्वाह में चाहे कितना ही फर्क हो'''मन में फर्क नही होना चाहिए। आप तो हमेशा कजूसी करते रहते हैं। बातें तो करते हैं बडी-बड़ी और फिल्म का नाम लेते ही तनख्वाह को रोते हैं।" इतना कहकर वह अपने मुह को गुब्बारे की तरह फुला लेती। मैं कुछ देर इधर-उधर की सोचता रहता। फिर अपने बजट और उसकी फरमाइश को तौलता। हमेशा उसकी फरमाइश भारी होती। अततः मैं हार जाता और एक हारे हुए एम० एल० ए० की तरह मीठी-मीठी बाते करके उसे फुसलाता कि कही बात को भूल जाए। लेकिन जनाब वह भूलने वाली कहा !

धीरे-धीरे ज्यो-ज्यो शादी के मामले मे हम पुराने होते गए, फरमाइशें बढती गईं। फिल्मो से लेकर साडियो तक ही सीमित नही, बल्कि सोने के छोटे-मोटे आभूषण भी उसकी आखो पर चढने लगे थे। हा, फरमाइशें पूरी करता या नही वह अलग बात थी। आभूषण के मामले मे तो आप भी अंदाजा लगा सकते हैं कि आठ-नौ साल शादी को हो गए और जान से ज्यादा प्यारी सालिया छल्लो के लिए अब भी इंतजार कर रही हैं।

खैर साहब, मैं तो घर का सामान लाते-लाते ही तग आ चुका था। आभूषण तो मेरे लिए बहुत बडी चीज थी। मैं पत्नी जी से कई बार कहता कि औरत का सबसे बडा आभूषण लज्जा है। यदि तुम्हारे पास है तो ! पत्नी जी कंधे उचका कर अगूठा दिखा देती और मैं समझ जाता कि बेचारी के पास ये आभूषण भी नही है।

मैं आपको सच बता दू कि मैं शादी करके वास्तव मे फस चुका था।

मैं यह तो अच्छी तरह जानता था कि ढोल दूर के सुहावने होते हैं, लेकिन महसूस पहली बार हुआ था। कहना चाहिए यह शादी वाली गलती खुद ने जो की थी।

भाई, बंधु, साथी लोग तो बनके बाराती 'टी-पी' के चल दिए थे घर को और मुझे छोड़ गए बीच मझधार में। मैं मन को ढाढस बधाता कि तू रो मत। हिम्मत रख। एक कहावत है न—'हिम्मत-ए-मर्दे, मदद-ए-खुदा।' और फिर मैं अपने-आपसे कहता कि तूने शादी की है, कोई गुनाह तो नहीं किया? लेकिन बार-बार समझाने पर भी मन मुंह को आता।

मुझे आटे-दाल का भाव तो पहले ही ज्ञात था। लेकिन अब कुछ और चीजों के भाव भी जानने लग गया था। जैसे पांच साल के बच्चे के कितने रुपये का सूट आएगा। छः साल के बच्चे के बूट कितने में आएंगे। बच्चों की छोटी साइकिल कितने की आती है। ऐसी अनेक चीजों के 'कपनी वाइज' दाम जानने लग गया था मैं।

वक्त के साथ-साथ पत्नी जी फैलती गईं और फरमाइशें सिकुड़ती गईं। लेकिन इसी दौरान तीनों बच्चों ने फरमाइशों की झड़ी-सी लगा दी।

मैं जानता था कि मैं गलती पर गलती करता जा रहा हूं। मैंने वास्तव में अपनी रजाई की तरफ कतई ध्यान नहीं दिया कि कितनी छोटी है और दिन-प्रतिदिन रजाई तो छोटी होती गई और मैं अपने पांव पसारता ही चला गया। देखते-ही-देखते मेरे आंगन में पांच बच्चे खड़े थे। मोनिका, मीनू, चपू, भावना और बबलू। एक कोने में पत्नी जी खड़ी थी और दूसरे में उनकी तरफ घूरता मैं।

मोनिका, मीनू और चपू सरकारी स्कूलों में जाने लगे थे। और भावना गली-मोहल्ले तक घूम आती और छोटा ही छोटा हमारा लाडला बबलू सारे दिन अपनी मम्मी के चिपका रहता।

बच्चों के हाल बेहाल थे। चपू की निक्कर फटी थी तो मोनिका की फ्रॉक। मीनू के बूट फटे थे तो भावना के बाल बड़े थे। बच्चों की इन छोटी-छोटी फरमाइशों से मैं वास्तव में तंग आ चुका था। कभी चपू का पैन खो जाता। कभी मोनिका की किताब फट जाती। कभी भावना की चप्पल टूट जाती। यही नहीं, स्कूल जाने वाले लाडलों के लिए कभी स्कूल

की ईंग चाहिए तो कभी कसूल का आता। मेरे दिमाग में उनकी कल्पनाओं का भंडार भर जाता।

आज मैं पत्नी जी, बच्चों और घर के हाल देखकर परेशान होता जा रहा हूं और अपने अतीत को याद करके सोचता हूं कि कितना सुखी था मैं, जब कुंवारा था। न फिक्र न चिन्ता। न आने का पता न जाने का। दिन किस कदर निकल जाता, पता ही नहीं चल पाता। बस नहा-धो लिए और चल दिए बाजार की सैर करने। या फिर ऑफिस गए तो आ गए गप्प-शप करके। जिन्दगी मौजों भरी थी।

हां, इतना अवश्य था कि कोई सुन्दर जोड़ा देखकर या कबूतर-कबूतरी का प्रेमालाप देखकर कई बार ठंडी आह भरते कि काश! हम भी होते शादीशुदा। और फिर शादी हुई तो कल्पनाओं का सारा भूत उतर चुका था। देख लीजिए हमारा तो बस यही फसाना है शादी करने का।

झूठा कहीं का

बात उन दिनों की है जब मैं पुलिस में सिपाही की नौकरी करता था। शुरू-शुरू में जब मुझे यह नौकरी मिली तो मैं रिश्तेदारों की नजर में आ गया, लेकिन अपने ही क्षेत्र में सिपाही की नौकरी करना मुझे गवारा न हुआ।

मैंने अपना तबादला दूसरे शहर यानी अपने घर से काफी दूर करवा लिया। वहां कमरा लेने की समस्या भी आई। पता चला कि वहां सिर्फ परिवार वालों को ही कमरा देते हैं। उस वक्त थोड़ा-सा झूठ बोला था मैं, कि परिवार वाला हूं। एक बीवी है और एक बच्चा, लेकिन बीवी अभी मायके गई हुई है और बच्चा अपने ननिहाल। मेरा काम बन गया यानी मुझे कमरा मिल गया।

झूठ बोलने से कमरा मिल गया तो मेरा हौसला बढ़ गया। कुछ ही दिनों बाद मैंने गांव कहलवा दिया कि अगर कोई मेरे रिश्ते की बात चलाए तो कह देना कि हमारा लड़का सिपाही से 'प्रोमोट' होकर छोटा थानेदार बन गया है।

छोटा थानेदार बनने की हवा हमारे गांव और आसपास के क्षेत्र में ऐसी फैली कि बस पूछो मत। रिश्तेदारों की झड़ी लग गई।

घर से मेरे पास एक पत्र आया कि किशनपुर गांव के ठाकुर जी अपनी लड़की के लिए मुझे देखने आ रहे हैं। पत्र पढ़कर मेरे दिल की धड़कनें बढ़ गयीं। सोचा, 'अब क्या करूं ?' फिर मैंने अपने झूठ को छिपाने के लिए

पुलिस थाने के थानेदार जी को बातो मे लेकर हाथो पर लिया और उन्हे एक 'आइडिया' बताया। वो मान गए।

वे अपनी बिना धुली ड्रैस मेरे कंधे पर डालते हुए बोले, "ये लो और ड्राइक्लीन करवाकर पहन लेना।"

मैं बडा खुश हुआ। पुलिस थाने के सभी कर्मचारी मेरा सहयोग देने के लिए राजी हो गए। सहयोग देने के उपलक्ष्य मे मैंने सभी कर्मचारियो को एक अच्छी-सी पार्टी भी दे दी। पूरे एक माह की तनख्वाह पार्टी मे 'गोल' हो गई। पर इस बात का मुझे कोई गम न था।

दूसरे दिन ही थानेदार की पोशाक पहनकर मै ड्यूटी पर आया। मेरे सभी साथी मुझे देखकर आखो-ही-आखो मे मुस्कराने लगे। एक बार तो मुझे अटपटा-सा लगा। फिर यह सोचकर कि यदि ऐसा नही किया तो शायद अच्छी पत्नी न मिले या फिर हो सकता है जीवन-भर कुवारा ही रहना पडे।

थोडी देर बाद लगभग 60-70 वर्षीय एक वृद्ध थाने मे घुसा। माथे पर तिलक, सिर पर पीले रग की पगडी। मैं देखते ही समझ गया कि हो-न-हो यह मेरा भावी ससुर ही है।

भावी ससुर पर धाक जमाने के लिए मैंने फोन से रिसीवर उठाया और उसकी तरफ तिरछी नजर से देखते हुए बोला, "हैलो । जी हा'''। मैं थाने से ए० एम० आई० मनोहरलाल थापर बोल रहा हू। ' अच्छा''' अच्छा'''ठीक है'''आपका काम हो जायेगा'''अरे ! नही जी'''आपका काम नही करेंगे तो फिर किसका करेंगे'''। आप बेफिक्र रहे।"

उस वृद्ध ने जब मेरा नाम सुना तो वह दोनो हाथ बाधकर मेरे पास खडा हो गया। मैंने रिसीवर क्रेडिल पर रखा तो उसने मुझे नमस्कार किया।

मैंने प्रत्युतर मे नमस्कार कहकर उसे बैठने का इशारा किया। फिर मैंने पूछा, "कहिए, कैसे आना हुआ ?"

वह बोला, "जी ! मैं किशनगढ से आया हू, आपसे मिलने।"

काफी देर तक इधर-उधर की बातें होती रही। बातो-बातो मे मैंने महसूस किया कि उसने अपनी लाडली के लिए मुझे पसद कर लिया।

मैंने घिघियाते हुए कहा, "नहीं···नहीं···चिंता तो नहीं है, लेकिन···।

"लेकिन क्या ?" पत्नी ने पूछा।

"देखो, बात यह है (मैं धीरे से बोला), मैं पुलिस थाने में छोटा थानेदार नहीं, बल्कि सिपाही हूं।"

"क्या कहा ? आप कहीं मजाक तो नहीं कर रहे हैं ?" पत्नी बोली।

मैंने कहा, "नहीं, मजाक नहीं, हकीकत है। सच कह रहा हूं भई··· अब तुमसे क्या छिपाना।

फिर क्या था। सारा वातावरण में कोहराम मच गया। सुशील स्वभाव की पत्नी ने चंडी का रूप धारण कर लिया।

वह बोली, "तुमने हम सबको धोखा दिया है। मैं तो शादी वाले दिन ही समझ गयी थी कि तुम छोटे थानेदार नहीं हो सकते। झूठ बोलकर तुमने मेरी जिंदगी खराब की है।"

उसने मुझे और भी न जाने कितनी ही उल्टी-सीधी बातें कही थी, लेकिन घर के आपसी झगड़े की सारी बातें बताना मैं उचित नहीं समझता। हां, इतना बता देता हूं कि वह उसी दिन मुझसे नाराज होकर अपने मायके चली गई।

मैं असमंजस में था कि अब क्या करूं ? फिर भी मैं अपने निश्चय पर अडिग रहा कि चाहे कुछ भी हो जाए पर अब कभी झूठ नहीं बोलूंगा। उस दिन का बोला गया झूठ मेरे अंतरमन को कचोट रहा था। मुझे पछतावा हो रहा था अपने झूठ पर। मैं अब प्रायश्चित्त करना चाहता था।

उसी दिन मैंने मकान मालिक को बताया, "जनाब, मैं छोटा थानेदार नहीं, बल्कि मैं तो मात्र एक सिपाही हूं।"

सुनकर मकान मालिक बोला, "अजी, आपके छोटा थानेदार या सिपाही होने से हमारे किराये में कौन-सा फर्क पड़ता है हमें तो···।"

बीच में बात काटती हुई कड़कती आवाज में मकान मालकिन बोली, "किराये में तो फर्क नहीं पड़ता, लेकिन हमारी शान में तो बट्टा लगता है। सात दिनों के अंदर-अंदर कमरा खाली कर देना···हां।"

मैं सुनकर मौन रहा। उदास मन मे बस इतना ही बोल पाया, "जैसी आपकी आज्ञा।"

मोहल्ले मे सबको पता चल गया। फिर पास-पड़ोसियो ने तो क्या, उनके नौकरो तक ने मुझे नमस्ते करना छोड़ दिया।

मजबूर होकर मुझे कमरा बदलना पड़ा। पत्नी मायके मे अभी तक नही लौटी है और मैं छोटा थानेदार बनने की लालसा मे आज भी सघर्ष कर रहा हू।

कलम घिसाई

आप आश्चर्य करेंगे कि मैंने पत्रकारिता को कब गले लगाया ? मैं खुद भी नही बता सकता। हा, इतना अवश्य बता सकता हू कि इस पत्रकारिता के कारण मुझे छोटे-बडे अनेक दुखो का सामना कई बार करना पड़ा है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि शुरू-शुरू मे मैने हमारे मोहल्ले की लाइट व्यवस्था के बारे मे एक खत राष्ट्रीय स्तर के अखबार मे लिखकर जरूर भेजा था। खत छपा और कुछ ही दिनो मे खबो पर बल्ब भी लग गए। मेरी खुशी की सीमा न रही। मैं अब बल्बो की ओर देखकर मोहल्ले में सीना तानकर चलने लगा। बिजली विभाग ने भले ही अपनी सूझबूझ मे प्रकाश की व्यवस्था की हो, लेकिन मैंने तो अपने हमउम्र साथियो से अपने खत को ही श्रेय दिलाने का प्रयास किया। बस, फिर क्या था। खत भेजने का सिलसिला जारी रहा। इस प्रकार के खतो के अलावा मैं छोटे-मोटे समाचार बनाकर भी भेजने लगा और फिर मैं हमेशा इसी ताक में रहता कि कौन-कौन-से समाचार अखबार में भेजने हैं और किन बातो को समाचार बनाया जा सकता है।

एक दिन डरते-डरते एक समाचार मैंने अपने अध्यापक जी के खिलाफ ही भेज डाला। समाचार जैसे ही अखबार में छपा, जबर्दस्त प्रतिक्रिया हुई। स्कूल में उस समाचार को लडके चटखारे ले-लेकर पढ़ने लगे। सबधित अध्यापक जी ने मुझे धीरे से इशारा करके बुलाया और मुझ पर रौब झाड़ने लगे। यहा तक कि फेल करने की भी धमकी दी, लेकिन मैंने

भेज दी। तीन दिन बाद मैंने देखा कि वह समाचार सभी समाचार पत्रों में था। शहर में शाम में छपा और स्थानीय समाचार पत्रों में सुर्खियों में। मैं तो यह समाचार भेजकर इसकी इति श्री समझ ली थी, लेकिन मुझे क्या पता था कि इसका कोई घातक परिणाम भी निकल सकता है।

जिस दिन यह समाचार छपा था उस दिन मैं एक होटल के बाहर बेंच पर बैठा अखबार हाथ में लिए चाय पी रहा था। तभी मैंने देखा कि वही मजनू अपने चार साथियों सहित मेरी ओर ही आ रहा है। मेरी बायीं आंख फड़कने लगी। मैंने मन-ही-मन खुदा से मिन्नत मांगी और बजरंगबली हनुमान जी को सवा रुपए का प्रसाद बोल दिया और फिर धीरे-धीरे चाय को अपने हलक में उतारने लगा।

अब वे पांचों जने मेरे नजदीक आ गए थे। उन्हें देखकर अनदेखा करते हुए मैंने चाय का गिलास बेंच पर रख दिया और अखबार में नजरें गड़ा दीं। अखबार तो उस वक्त क्या पढ़ना था, लेकिन अपने-आपको मैंने अखबार में इतना व्यस्त दिखाने का प्रयास किया, मानो कोई बहुत ही गंभीर बात पढ़ रहा हूं।

तभी उस मजनू ने जूते समेत अपना दायां पैर बेंच पर रखा, जिस पर मैं बैठा था। मैंने नजरें उठाईं, फिर नजरें गिराकर पुनः अखबार में खो गया। मैं अंदर-ही-अंदर तो डर रहा था, लेकिन फिर चेहरे के भाव छिपाते हुए धीरे से मुस्कराते हुए बोला, "आइए भाई साहब···बैठिए।" मानो वे मेरे कोई पुराने परिचित हों।

उस मजनू ने मेरे हाथ से अखबार लेते हुए गुस्से से कहा, "मिस्टर पत्रकार, आज हम बैठने नहीं, बिठाने आए हैं।"

मैं समझ तो गया था कि माजरा क्या होने वाला है। फिर भी मैं अनजान बनते हुए बोला, "क्यों भाई साहब, हमसे ऐसी क्या गुस्ताखी हो गई, जो ऐसा कह रहे हैं?"

"गुस्ताखी तो मुझसे हो गई थी। तुम तो पत्रकार हो। तुम गलती थोड़े ही करते हो। पत्रकार कब से हो तुम?" उसने पूछा।

मैंने कहा, "नहीं भाई साहब, मैं कैसा पत्रकार हूं। मैं तो बस यों ही थोड़ा-बहुत लिख लेता हूं।"

तभी उस मजनू के साथी ने हॉकी को मेज पर ठोकते हुए कहा, "मिस्टर पत्रकार, तुम्हारे 'दिनमान' खराब चल रहे हैं। मुझे लगता है तुम्हारे सिर पर राहु मंडरा रहा है।"

मैं चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा। मैं जानता था कि यदि ज्यादा बोलूंगा तो ये साक्षात् राहु मेरा भुर्ता बनाने में देर नहीं लगाएंगे, लेकिन मेरी चुप्पी को वे भांप गए थे और तभी तडातड···ढिशुग 'ढिशुग की आवाजें मेरे कानों में गूंजने लगी। आप समझ ही गए होंगे, ज्यादा क्या स्पष्ट करूं। उस वक्त मैंने पूरे दो माह अस्पताल में बिताए। अस्पताल में पड़ा-पड़ा मैं हमेशा यही सोचता कि यदि यह पत्रकारिता का धंधा न करता तो यह दिन क्यों देखना पड़ता! अब मैं तंग आ गया था पत्रकारिता से।

मैं सोचता कि मेरी इस पत्रकारिता से भ्रष्टाचार तो मिटेगा नहीं। फिर क्यों दुखी होता हूं? क्योंकि अब मैं जान चुका था कि पत्रकारिता का जीवन कितना संघर्षपूर्ण और कष्टपूर्ण जीवन है। जिस किसी की भी पोल खोलो, दुश्मन बन जाता है। मेरे साथ भी तो यही हुआ था। अनेक लोग मेरी जान के दुश्मन बन गए थे।

दूध में पानी की शिकायत करते ही दूधवाला नाराज हो गया। माचिस में कम तीलियां होने की न्यूज बनाई तो राशन वाले ने उधार देना बंद कर दिया, होली-दिवाली और नये साल की बंधी न देने पर पोस्टमैन खफा हो गया, मंदिर में पत्थरों के भगवान् के सामने हाथ जोड़े, आंखें बंद किए भोली-भाली रूपवती कन्या को सूक्ष्मता से निहारती पुजारी की वासनाभरी आंखों की पोल-पट्टी खोलते ही वह भी जान का दुश्मन बन गया। सोचता हूं पत्रकारिता ने जीवन में एकाकीपन-सा ला दिया है। कुछ भी हो, चाहे भ्रष्टाचार न मिटे, लेकिन और बढ़ावा तो न मिलेगा और एक दिन धीरे-धीरे यह भ्रष्टाचार मूलरूप से खत्म हो जाएगा।

पत्रकारिता के कारण मैं बहुत दुखी हुआ हूं, लेकिन यह पेशा छोड़ूंगा नहीं, चाहे कोई मुझे मजबूरन शहीद कर दे या मेरी जिन्दगी में जहर घोल दे।

इसी संदर्भ में एक शायर अजीज 'आजाद, की गजल की कुछ पंक्तियां याद आ रही हैं—अर्ज है :

> 'इतना दूषित हो चुका है, देश का वातावरण
> सांस घुटती जा रही है, दिल तो पत्थर हो गया
> किस तरह ये लोग मन मे, जहर भरने लग गये
> अच्छा खासा आदमी भी, आज विषधर हो गया।'

धंधे में धधा

जी हा, मैं पान खाता हू । आदत नही है, बस यू ही कभी-कभार ही । जब पान खाने की इच्छा होती है तो मैं सीधा उस पनवाडी के पास चला जाता हू, जो पनवाडी कम, साहित्यकार ज्यादा है। वहा पान खाने के पैसे भी नही लगते तो मुफ्त भी नही मिलते । हा, पैसो के बदले उससे हल्की-फुल्की साहित्यिक बातें अवश्य करनी पडती हैं यानी उसकी प्रत्येक बात मे हा-हू करनी पडती है । मसलन वह कहता है, "सरमा जी, मैंने एक घजल लिखी है।" तो मुझे उसका हौसला बढाने के लिए समझ लो या अपने फर्ज के नाते या फिर पान खाना है इसलिए, बडी उत्सुकता से पूछना पडता है, "कौन-सी ?"

सवाल करते ही वह चूने की डडी पान पर ही रोक देता है और फिर गभीर मुद्रा बनाकर कुछ देर के लिए शून्य मे खो जाता है । उसकी दौरे (एक बीमारी) की-सी स्थिति देखकर मुझे कई बार भ्रम हो जाता है । फिर वह अचानक ही अपनी गजल कुछ यू शुरू करता है, "एक लडकी मेरे पास से गुजर गई, जैसे कही से कोई चिडिया उड गई···"

मैं सच कहता हूं, पत्थर की मूर्ति बना मैं उसकी पूरी 'घजल' सुनता। इतना ही नहीं, बीच-बीच मे वाह ! कितनी अच्छी लिखी है ! कई बार कहना पडता ।

उस दिन भी मेरी पान खाने की इच्छा थी । मैं उसके पास पहुचा । मुझे देखते ही वह गोभी के फूल की मानिंद खिल उठा और बोला,

"सरमा जी, आप भी बड़े मौके पर आए हैं। एक ज़बर्दस्त-सी 'ग़ज़ल' याद आ रही है।"

मैंने चेहरे पर बनावटी मुस्कराहट लाते हुए कहा, "तो भाई, देर किस बात की। हम आपकी गजल सुनने के लिए ही तो आया है।"

"सिगरेट दूँ, सरमा जी?"

"नहीं पान ही काफी है। चलिए, गजल शुरू कीजिये और साथ ही पान भी बनाते जाइए।" मैंने उत्सुकता से कहा।

दस मिनट तक वह न जाने क्या सुनाता रहा, मेरे तो कुछ भी पल्ले नहीं पड़ा। मेरी तो तन्द्रा तब टूटी, जब उसने कहा, "ये लो सरमा जी, आपका पान।"

वास्तव में उस वक्त मैं किसी नई कहानी के 'प्लाट' पर मनन कर रहा था। मैंने झट से पान लिया और मुह की शोभा बढाई। मैं बोला, "वाह! क्या पान है, आप तो हर चीज मे माहिर हैं।'

अपनी प्रशंसा सुनकर वह फूलकर कुप्पा हो गया। मैंने पान खा लिया तो अब खिसकना भी जरूरी था। मुझे इस बात का गम नही था कि वह पान के पैसे माग लेगा, बल्कि भय यही था कि वह अपनी कोई नई 'घजल' न सुना दे। खिसकने के लिए भूमिका बनाना भी जरूरी था। तो मैंने घडी मे समय देखने का उपक्रम किया और फिर बोला, "ओह! मुझे यहा आपके पास इतना समय हो गया। कमाल है, समय किस तरह गुजर गया, पता भी नही चला।" मेरे इतना कहने पर उसने खीसें निपोर दी और मैं 'फिर आऊगा' कहकर तेज कदमो से चल दिया।

कुछ दूरी तय करने के बाद मैने पीछे मुडकर देखा कि कही वह पीछे तो नही आ रहा है। फिर मन मे सतोप पाकर मैने ठण्डी सास भरी और मन-ही-मन सोचने लगा कि इतना समय किस कदर गुजारा, यह मै ही जानता हू। उस दिन कान पकडकर तौबा कर ली कि हे ईश्वर, इस गजल के विद्वान् से बचाओ, लेकिन कई बार जैसा सोचते है, वैसा नही होता है और वैसा हो जाता है, जैसा कि सोच ही नही सकते। मेरे साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ।

एक दिन मेरे मित्र उदयपुर से यहा आए। वे पान खाने के बड़े

शौकीन थे। पान भी वैसा नहीं, मीठा पत्ता और तीन सौ नंबर जर्दा तो उनके लिए बहुत ही जरूरी था। जिसकी कीमत नेट एक रुपया प्रति पान मेरी जेब की आज्ञा के प्रतिकूल थी। लेकिन मरता क्या न करता। मैं सीधा उसी पनवाड़ी के पास जा पहुंचा। वह मुझे देखते ही बोला "अच्छा सरमा जी, क्या बात है। आजकल हमारी तरफ आना ही छोड़ दिया क्या ?"

मैं बोला, "अरे नहीं भैया, थोड़ा-सा बुखार था इन दिनों।" क्या करता बहाना बनाया। बहानेबाजी करना मेरी कोई आदत में शामिल नहीं था, वो तो महज उसका दिल बहलाने के लिए। वैसे बहाना चल जाए तो कुछ देर अपना भी तो दिल बहलता है। तो साहब, मेरी बहानेबाजी से वह बड़ा प्रभावित हुआ और सहानुभूति जताते हुए उसने पूछा, "अब तो ठीक हो ना ?"

मैंने मरियल-सी आवाज बनाकर कहा, "हां, अब तो काफी ठीक हूं, आप सुनाओ "

तो वह शिकायती लहजे में बोला, "क्या सुनाऊं सरमा जी, आपके अखबार में मैंने, 'घर का कलेस' और 'जलती दुल्हनें' नाम की दो कहानियां भेजी थी। उनमें से आपने अभी तक एक भी नहीं छापी है। मैं फिर किसी बड़े अखबार में भेज दूंगा और उनमें छप गईं तो आप मुझे दोष मत देना कि तुमने दूसरे अखबार में क्यों भेज दी।"

मैंने कहा, "अरे भई, आप इतनी जल्दी निराश क्यों हो जाते हो ? चलिए आपकी कहानी अगले सप्ताह ही लगा देंगे। बशर्ते कि आप मुझे उन कहानियों की दूसरी प्रतिलिपि दे दें।"

वह खुश होकर बोला, "ऐसा ! मैं कहानी की दूसरी कापी अभी देखता हूं।" और पान के डिब्बों को इधर-उधर पटकता हुआ वह अपनी कहानी ढूंढने लगा। आखिर उसने एक कहानी को ढूंढ ही लिया। बेतरतीब ढंग से मुड़े-तुड़े कागजों में हस्तलिखित कहानी को मैंने देखा। उसका हस्तलेख इतना गंदा था कि बड़ा-बड़ों की समझ से बाहर था। कहानी लिखे उन कागजों में [illegible] की जगह [illegible] की [illegible] नहीं देखकर मेरे मुंह से अनायास ही हंसी का फव्वारा निकल पड़ा तो वह बोला, "क्या,

[illegible] अच्छे हैं वह ? वह भी [illegible] ईमानदार हो जाएगा । इसने मैंने कई बार ऐसा [illegible] जोरदार लिए हैं कि 'मार' के [illegible] को भी दूर देता है ।'

मैं चुपचाप उसकी बेतुकी बातों को सुनता रहा, सुनता रहा । फिर एक [illegible] दिन के लिए, दुकान जाने लिए बढ़ाया और घर आता ।

इस दिन के बाद मैं कई दिन तक उसकी दुकान की तरफ नहीं गया । एक दिन बाजार में मेरी मुलाकात उससे हुई तो मैंने देखा कि वह जैसे वर्षों से बीमार चल रहा हो । चेहरा काला-स्याह हो गया । आंखों में उदासी, सिमटा हुआ था । मुझे उसकी स्थिति देखकर तरस आ गया । मैंने पूछा, 'क्या बात है, तबीयत खराब चल रही है आपकी ?"

"हां, बीस दिन हो गए, डेंगू बुखार हो गया । आप सुनाओ ।"

"बस ठीक है । अच्छी गुजर रही है ।"

"आप तो आजकल धड़ाधड़ छप रहे हो सरमा जी । ट्रिब्यून में आपका व्यंग्य देखा तो तबीयत हरी हो गई । आकाशवाणी से परसों शाम को आपकी वो हास्य 'मास्टर फकीरचंद' सुनी, वह भी बड़ी जोरदार लगी ।"

"खैर ! ये तो चलता ही रहता है । आप सुनाइए । क्या कुछ कर रहे हैं ? क्या लिख रहे हैं ?" मैंने पूछा ।

"लिखना क्या है सरमा जी, आजकल साहित्य खत्म हो गया है और संपादकों को भी सही लेखक की पहचान नहीं है ।" वह मायूस होकर बोला ।

मैंने कहा, "मेरे भाई, निराश मत होइए । आप लिखते जाइए । एक दिन सफलता जरूर मिलेगी ।"

"सफलता क्या खाक मिलेगी सरमा जी, यह लिखना-लाखना तो घाटे का सौदा है । मैंने अब ये यह धंधा बंद कर दिया है । अच्छा मैं चलता हूं । अपना तो पुराना धंधा ही ठीक है ।" और वह थके कदमों से आगे बढ़ गया ।

उधारबाजी

ऋषि चार्वाक ने कहा था कि ऋण कृत्वा घृत पीवेत् अर्थात् ऋण लो और घी पीओ। यानी अपनी सेहत का पूरा-पूरा ध्यान रखो, चाहे इसके लिए ऋण भी क्यों न लेना पड़े।

तो जनाब, उक्त कथन के सदर्भ में मेरी दिली ख्वाहिश है कि उन चंद महानुभावों से आज आपका भी थोड़ा-बहुत परिचय करवा दूं, जो अपनी सेहत के चक्कर में मुझसे अनेक बार उधार ले चुके हैं। ख़ैर, मैं तो उनका परिचित हूं, उन्होंने तो अपरिचितों को भी नहीं बख्शा। बस, थोड़ी-सी हुई जान-पहचान कि पहुंच गए उधार लेने।

अब हमारे मित्र उधारीलाल जी को ही लीजिए। यथा नाम तथा गुण। उधार लेने के मामले में ये इतने कुशल हैं कि बस पूछो मत।

एक दिन ये सुबह-सुबह मेरे पास खीसें निपोरते हुए आए और अपना वही रटा-रटाया वाक्य दोहराने लगे, "शर्मा जी, दो दिन के लिए पचास रुपये मिलेंगे क्या ?"

मैं मना करने का बहाना ढूंढ़ने लगा, तभी वे बोले, "बात दरअसल यूं है शर्मा जी, कि हमारे मामा जी के साले के बहनोई आए हैं। बेचारे आजकल बड़े दुखी हैं। मेरे पास वे आशा लेकर आए हैं कि चलो, उधारी लाल जी अपने नजदीकी रिश्तेदार हैं। आप ही बताइए शर्मा जी, दुख में अगर पड़ोसी या रिश्तेदार काम नहीं आयेगा तो फिर कौन आएगा ?"

मैंने कहा, "देखता हूं, अगर हुए तो मना नहीं करूंगा।"

वो ये बोले, "अजी आप तो साक्षात् हरिश्चन्द्र के अवतार हैं। आप झूठ थोड़े ही बोलेंगे और हां, याद आया…कल तो आप अपने ऑफिस से महगाई भत्ते के छः सौ बीस रुपये लाए थे ना । रात-रात मे आप खर्च थोड़े ही करते है । मैं आपकी आदत से अच्छी तरह वाकिफ हू कि आप फिजूल-खर्ची कतई पसद नही करते ।"

खैर साहब, बहाना बूकना मुझे अब कुछ जचा नही और मैंने दिल पर ईंट रखकर उन्हें उस दिन पाचवी बार पचास रुपये देकर पीछा छुड़ाया । साथ ही यह हिदायत भी दे दी कि "उधारीलाल जी, भविष्य मे मुझसे ऋण लेने का कष्ट मत करना, क्योकि मैंने अब उधार देना बद कर दिया है ।" लेकिन उन्होंने मेरी हिदायत को अनसुना करते हुए जेब मे नोटो को घुसेडा और रफूचक्कर हो गए । मैं देखता रह गया ।

लगभग दो घटे बाद मैं उधारीलाल जी के घर पहुचा कि देखते हैं वास्तव मे उनका कोई रिश्तेदार आया है या यो ही मुझे उल्लू बनाकर अपनी जेब गर्म की है ।

मैं यह देखकर दग रह गया कि जनाब उधारीलाल जी दोनो हाथो से लगभग पाच किलो हलवे से अपना गोदामनुमा पेट यो भर रहे थे, मानो रेलवे का ड्राईवर इंजिन मे कोयले घुसेड़ रहा हो । उस दिन मैं उनकी सेहत का राज समझा था ।

अब आपको उधार के मामले मे इनसे मिलते-जुलते ही दूसरे परिचित श्रीमान् नकदनारायण जी से मिलाते हैं । ये बडे ठाठ-बाट से रहते हैं । घर मे किसी भी चीज की कमी नही है ।

इनकी आदत है कि ये बाजार मे कोई भी चीज नकद खरीदना अपनी तौहीन समझते हैं । पान खाएगे तो उधार, कपडे धुलाएगे तो उधार, सब्जी लाएगे तो उधार, चाय पीएगे तो उधार ।

ये मित्रमण्डली मे जब कभी बैठते हैं तो बडी शान से कहते हैं, "बाजार मे मेरी बडी अच्छी 'गुडविल' है, तभी तो उधार मिलता है ।"

एक दिन की बात है । ये मित्र मण्डली मे बैठे अपनी शेखी बघार रहे थे । इसी बीच हमारा एक मित्र बोला, "नकदनारायण जी, आपकी जान-पहचान भी बहुत है । तभी तो आपके घर दिन मे आने-जाने वाले लोगो

का ताता बधा रहता है।"

तभी दूसरा मित्र बोला, "अरे भैया, इन्हें दुनिया जानती है। तुम्हें पता नहीं, ये सब नकदनारायण जी की 'गुडविल' का कमाल है। इनके घर में किस बात की कमी है। घर में सुई से लेकर कलर टी० वी० तक उधार लाए हुए हैं। यह बात अलग है कि वे सब ऋण का तकाजा करने आते हैं।"

इतना सुनना था कि नकदनारायण जी को छोड़कर सारी मित्रमण्डली खिलखिलाकर हंस पड़ी।

नकदनारायण जी अपनी सफाई पेश करते हुए बोले, "जमाने को देखो भैया। रुपये की कीमत समझो। अगर कहीं से उधार सामान मिलता है, तो नकद खरीदने की जरूरत ही क्या है? उधार लेना तो एक कला है। जिसे भी सीखनी हो मुझे गुरु बना लेना।"

उनकी बातें सुनकर दूसरे मित्रों की प्रतिक्रिया का तो मैं कह नहीं सकता, लेकिन मैं उसी वक्त अपने-आपको कोसने लगा कि मैं आज तक इस कला से वंचित क्यों रहा? और उसी दिन उधार की इस कला को सीखने और निपुणता हासिल करने के लिए मैंने मन-ही-मन नकदनारायण जी को अपना गुरु मान लिया। वे जहां कहीं जाते, मैं एक साए की तरह उनके पीछे लगा रहता।

दिन पर दिन बीतते गए। आखिर मैं भी उधार लेने के मामले में पारंगत हो गया। नाई, दर्जी, धोबी घर के खूब चक्कर लगाते हैं, लेकिन मैंने भी अब बेशर्मी को गले लगा लिया है, क्योंकि बेशर्मी उधार मांगने की कला का मुख्य बिंदु है।

आज ऋण लेने के हजारों नुस्खे मुझे मौखिक याद हैं। आप अगर सीखना चाहें तो स्वयं मिलें या पत्र-व्यवहार करें। याद रहे, गुरु दक्षिणा के इक्कीस रुपये जरूर साथ लाएं या धनादेश द्वारा भेजें। तथास्तु।

पछतावा अपनेपन का

जजी साहब, मेहरबानी है आपकी जो मेरे दिल की बात पूछ ली और रूप से मिले-मिलने करने का आपने मौका दिया। सच कहता हू, आज सिर्फ मुझे अपनों ने ही सताया है। जिसे भी अपनाया, बाद मे मुझे पछत ही पडा।

दस-पंद्रह मिनट के समय मे कितनाक बोल पाऊगा, क्योकि मेरे अजीज मित्र बंधुओ की लम्बी कतार देखकर इच्छा होती है कि अ बारी-बारी से सबकी पोल-पट्टी खोल दू। बखिया उधेड दू सबर्क उनकी पट्टी पर फेर दू पोचा, क्योकि जिनको भी मैने अपनाया उन धोखा ही मिला।

लोग कहते हैं—हवा ही खराब है'' तो क्या हम हवा मे नही रहते कुछेक कहते हैं—जमाना खराब है' 'तो क्या हम जमाने मे शामिल नह हैं ? किस-किस का जिक्र करूं ? किस-किस को छोड़ू ? समझ मे नहं आता। खैर साहब, फिलहाल उसका ही जिक्र करता हू, जो मुझे तो आज भी याद हैं, लेकिन मैं उन्हें याद हू अथवा नही'' कह नही सकता।

एक दिन एक श्रीमान् जी बडी अफरा-तफरी मे आए और आते ही बोले, "शर्मा जी'''शर्मा जी ''अपनी साइकिल देना तो जरा", और वे मेरे हाथो से साइकिल लेकर यह जा'''वह जा'''। मुझे यह सोचने का मौका ही नही मिला कि मुझसे साइकिल मागने वाला आखिर है कौन ? फिर मैंने सोचा कि कोई अपना ही आदमी है। आखिर इसानियत के नाते

अपनापन तो रखना ही चाहिए। मेरे अपनत्व के नाते ही तो साइकिल वह ले गया। अजनबी की हिम्मत थोड़े ही होती है। उस घटना को आज चौदह अप्रैल छियासी को एक साल एक माह और पूरे चौदह दिन हो गए हैं। उस महानुभाव के इंतजार में आज भी आंखें बिछाए बैठा हूं, कि कभी तो वह मेरी जरूरत को भी समझेगा।

एक बार बीकानेर में यात्रा के दौरान स्टेशन पर ही एक बंधु से मुलाकात हुई। मैंने अपना परिचय दिया तो उनने खुश हुए मानो कुत्ते को हड्डी मिल गई है। जनाब ने हाथ मिलाते हुए कहा, 'मैं आपका वर्षों से फैन हूं। जब भी किसी रचना में आपका नाम देखता हूं तो सारे काम-धाम छोड़कर पहले उसे पढ़ता हूं।" मैंने सुना तो फूलकर गुब्बारा हो गया।

कुछ पल के लिए मैं कल्पना लोक में विचरण करता हुआ पुनः डिब्बे में आया और फिर सहयात्री को चाय पिलाई, नाश्ता करवाया और एक पान भी। मैं सोच रहा था कि उसकी सेवा में मेरी तरफ से कोई कमी न रह जाए।

रात्रि के तीन पहर तक मैं उसे अपनी रचनाओं का सेवन कराता रहा। आखिर उसके द्वारा बार-बार ली जाने वाली उबासियों ने मुझे अपनी रचनाएं समेटने पर मजबूर कर दिया। मैंने अपनी रचनाओं से उसका कितना मनोरंजन किया था यह या तो वह जानता है या फिर ऊपर वाला। ऊपर वाले से मेरा तात्पर्य 'खुदा' से है। आप कृपया 'बर्थ वाले' ध्वनि से अर्थ न जोड़ लें। वह तो मेरी कविता सुनते ही साढ़े छः बजे तक के लिए मर गया था और उसके खर्राटे इंजिन की आवाज से साज का काम कर रहे थे।

अपनत्व के नाते मैंने अपने सहयात्री यानी मेरे श्रोता कम दर्शक से यह निवेदन किया कि अब आप कुछ देर आराम कर लें। थक गये होंगे। लेकिन वे कुछ ज्यादा ही संवेदनशील थे। बोले, 'नहीं लेखक जी, घंटे आधे घंटे आप आराम फरमाएं। आपके सामान का मैं ध्यान रख लूंगा।" सुनकर मैं आश्वस्त हुआ। फिर बोले, 'आपको दिन में और भी तो कई काम करने हैं। मैं तो घर जाकर सो जाऊंगा। आप आराम करें।" और

साहब [illegible] आ रहा हूं।

[illegible] हो गई। मेरा [illegible], [illegible] और मेरा [illegible] था।

मैंने शादी के दिन [illegible] इधर-उधर झांका। [illegible] किसी ने देखा। [illegible] मैंने मुंह पर हाथ फेरा। चेहरे पर [illegible] के मारे बारह बज रहे थे। मैं अपने-आपको कोसने लगा। सोचा, दुनिया का किनारा आ गया है। अब हालत ये है कि आज किस पर विश्वास करें, विश्वास नहीं होता।

अब जरा मेरे भूतपूर्व मोहल्ले के माहौल पर भी दृष्टिपात कीजिएगा। पड़ोसी से दुश्मनी रखना तो अपने पैर पर अपना ही पैर मारना है। अतः मैंने अपने पड़ोसियों को तो क्या, पड़ोसियों के पड़ोसियों से भी अपनत्व रखा और जिसका परिणाम यह हुआ कि पहले तो मुझे अपने टी० वी० से हाथ-पैर धोने पड़े और अन्त मकान ही बदलना पड़ा।

मेरे कई पड़ोसी थे—कासिम, हनीफ, हबीब खां, डांगर, मोगर आदि-आदि। इन सबमें मेरे प्रिय पड़ोसी थे—नवाब हबीब खां साहब। जिन्हें सब दुलार से 'खां साहब' कहते थे।

खां साहब, शुरू-शुरू में बड़े प्रेमी आदमी हैं। इसी भ्रम में मैंने भी उन्हें गले लगा लिया। सोचता था—रसगुल्लों जैसी मीठी आवाज का धनी तो रोबोट भी नहीं ढूंढ सकता। मुझे तो बैठे-बिठाए मिल गए थे, लेकिन बाद में पता चला कि मीठे के मोह में मैंने नमक में हाथ डाल लिया है और अब पछता रहा हूं। मैं अपने भूतपूर्व मकान में सिर्फ एक ही महीना रहा था। इस एक महीने में ही खां साहब ने मेरे नाक-कान में दम कर दिया।

शुरू-शुरू में पहली मुलाकात में मिलते ही बोले, "अरे मियां···अरे भई शर्मा जी, खुदा खैर करे, घर में हो क्या ?"

"हां कहिए खां साहब, कैसे आना हुआ ?" मैंने पूछा तो वे बोले

"अरे भई'' कहना क्या है, खुदा खैर करे, एक पड़ोसी के नाते बस मिलने आ गए।"

"बैठिए", मैंने धीरे से कहा।

तो वे धम से सोफे पर जम गए और टी० वी० का स्विच ऑन करते हुए बोले, "अरे भाई कमाल है'' घर में टी० वी० लगा रखा है और जनाब किताबें पढ़ने में मशगूल हैं।"

"टी० वी० में कोई खास प्रोग्राम तो आ नहीं रहा था खां साहब।" मैंने कहा।

"खुदा खैर करे, लगता है आप टी० वी० देखने के शौकीन नहीं हैं। तभी तो जब देखो'' बंद मिलता है।"

"नहीं खां साहब, ऐसी बात नहीं है। अगर शौक नहीं होता तो इसे घर में क्यों लाता?"

"अरे, आप क्या जानों, टी० वी० देखने से ज्यादा दिखाने की चीज है। मैं अपनी बचत से टी० वी० का एंटिना तो ले आया हूं। छत पर लगी हुई है। आप देख ही रहे हो और अब पांच-चार सालों में खुदा खैर करे, कोई टी० वी० भी आ जाएगा।"

"यह तो बहुत अच्छी बात है। टी० वी० तो आजकल होना ही चाहिए। चाय पीएंगे खां साहब?"

"नहीं, चाय का क्या पीए'' चाय पीए मेरे दुश्मन'' खुदा खैर करे, '' अपन तो कड़क कॉफी पीते हैं भई'' "

और साहब, वे कॉफी दर कॉफी पीकर रात्रि के ग्यारह बजे घर से विदा हो गए तो मैंने चैन की सांस ली।

दूसरे दिन खां साहब दोपहर को ही आ धमके और बोले, "अरे भई शर्मा जी'''सुनते हो ''दो दिन के लिए आपका टी० वी० चाहिए खुदा खैर करे। आप हमें इतना चाहते हैं ' इतना प्रेम देते हैं'' टी० वी० के लिए मना थोड़े ही करेंगे।"

मैं कुछ सोचता। इतने में ही वे टी० वी० उठाकर बोले, "खुदा खैर करे, आज लखनऊ से खास मेहमान आने वाले हैं। उनके जाते ही वापस कर दूंगा। खुदा खैर करे शर्मा जी, आप मेरी इज्जत रख लीजिए।"

एक आदर्श पड़ोसी के अपनत्व के नाते मैंने बिना कोई ना-नुकर किए अपना आठ हजार का रंगीन टी० वी० मजबूरन उन्हें दो दिन के लिए दे ही दिया लेकिन 15 दिन तक टी० वी० घर नहीं पहुंचा तो मेरे शरीर का बायां हिस्सा फड़कने लगा।

बायीं आंख ही गजब ढा देती है, तो बायां अंग न जाने क्या करेगा ''यह सोचकर मैं डरते-डरते खां साहब के घर पहुंचा। छः-सात बच्चे मिलकर खां साहब को उठा रहे थे और खां साहब इधर-उधर पड़े कांच के टुकड़ों को।

मैं खां साहब का थोबड़ा देखकर ही भांप गया कि माजरा क्या है। मेरा टी० वी० दसों दिशाओं में बिखर चुका था। मेरे मुंह से इतना ही निकला था, "ये क्या हुआ खां साहब ?"

खां साहब मरियल-सी आवाज में बोले, "भई शर्मा जी, बच्चे टी० वी० से चौदह अप्रैल फूल मना रहे थे, खुदा खैर करे···यह आपसे भी तो टूट सकता था।"

अपनत्व के नाते मैं खां साहब को कुछ भी नहीं कह सका और मन में एक टीस लेकर अपने दड़बेनुमा बंगले में घुसा और एक टूटी-सी खाट पर पसर गया।

खाट पर पड़ा-पड़ा मैं अपनों का मूल्यांकन करता रहा। कुछ ही देर में मेरे मन की टीस शे'र के रूप में उभरकर होठों पर आई तो बोल यों निकले कि—

तिल-तिल कर मार दिया है मुझे
इक रोज जनाजा उठा चले
अर्थी को सजा कर चंदन में
फिर आग लगा दी अपनों ने।

दास्ताने मकां : बकलम खुद

देखिए बुरा न मानिएगा। मैं आपसे एक बात पूछ रहा हूं कि "आप जिस मकान में रहते हैं वह आपका अपना है या किराए का?" या एक दूसरा सवाल पूछूं, "यदि आपका अपना मकान है तो आपके घर में कोई किराये-दार रहता है?" मेरा मतलब है आपने किसी को अपने मकान का कुछ हिस्सा या मकान किराये पर दे रखा है? या आप स्वयं किरायेदार हैं?

वैसे मैं कोई टैक्स इन्सपेक्टर नहीं हूं बल्कि मैं तो स्वयं किरायेदार हूं और घर से निकले'' नहीं' नहीं'' मेरा मतलब है घर छोड़े आज पूरा एक युग यानी पूरे बारह साल बीत गए और इस बारह साल की अवधि में मैंने न जाने कितने ही मकान बदले हैं।

मकान किराये पर लेने और फिर बदलने का मुझे कोई शौक नहीं है बल्कि यह तो मजबूरी है। बाहर रहते हैं ना इसलिए। और यह मजबूरी मुझ अकेले की नहीं अपितु शहरी वातावरण में रह रहे अस्सी-नब्बे प्रतिशत लोगों की है, जिन्हें एक से बढ़कर एक अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

मैं स्वयं भुक्तभोगी हूं इसलिए अपनी राम-कहानी आपको सुना रहा हूं कि किस-किस प्रकार के मकान-मालिक होते हैं। इसका समस्त मकान मालिकों से मेरा निवेदन है कि इसे अपनी उपेक्षा या चुगली ना समझें, क्योंकि मैं स्वयं एक किरायेदार हूं और मुझे कमरे में रहना है।

शुरू-शुरू में जब मैं छात्र था यानी छठे दर्जे में पढ़ता था, तब मकान

ए, ताज्जुब हुआ। मकान-मालिक ने जिन प्यारे-प्यारे शब्दों में बताया था ... और, कोई बात नहीं। सभी मकान-मालिक एक-से तो नहीं होते। यही सोचकर मैं दूसरे मकान की ओर बढ़ा और पूछा तो जवाब मिला, 'हम पढ़ने वालों को कमरा नहीं देते।"

मैंने कहा, 'साहब, आपको किराया एडवांस दे देंगे।"

वह बड़ी रुखाई से बोले, "हम किराये का लालच नहीं है। बस मैंने कह दिया न, हम पढ़ने वाले छोकरों को मकान देते ही नहीं हैं।" मैं उन्हें नमस्कार करके आगे बढ़ा और कमरे की तलाश में निकल पड़ा।

आखिर कमरा ढूंढ़ ही लिया। किराया तय होते ही फौरन जेब से निकालकर दे दिया ताकि इतना बढ़िया कमरा हाथ से न चला जाए। होटल में रखा सारा सामान तांगे में डालकर कमरे में ले आए।

कमरे में सामान रखते ही बड़ी-बड़ी मोंछे में लगी फोटोफ्रेम को देखते हुए मकान मालकिन बोली, "सुनते हो, कमरे की दीवार में कोई कील वगैरह मत ठोकना और ये जितने भी आपके फोटोफ्रेम हैं, सबको आलमारी या संदूक में रख देना क्योंकि कील वगैरह ठोकने से हमारा कमरा खराब होता है।"

मैंने कहा, "नहीं-नहीं, मैं कोई कील वगैरह नहीं ठोकूंगा।" फिर फोटोफ्रेम को उसी वक्त संदूक में रखते हुए कहा, "बस अब तो आप

खुश।" और साहब, मकान मालकिन कमरे में रखे बाकी सामान पर भी सरसरी दृष्टि डालती हुई अंदर चली गई।

कमरा मिला तो सुख की सांस ली। फिर शाम ढली तो रोटियां भी बनानी थीं। स्टोव जलाते ही मकान मालकिन घर के अंदर से भागी-भागी आई और बोली, "अरे राम राम' ये क्या कर रहे हो? सारे कमरे का नाश कर रहे हो ' टुकड़े कमरे के बाहर बनाओ।"

मैंने कहा, "मां जी, बाहर कहां बनाएं बाहर तो जगह ही नहीं है '''गली में कैसे बनाएं ?"

वह बोली "यह तो आपको कमरा लेने से पहले सोचना था और ये मटका मटका कमरे में यूं ही भरकर रख दिया। इसके नीचे कोई बर्तन आदि रखो भई। आपको तो कमरे में रहना आता ही नहीं है।"

मैंने कहा, "मां जी, मकान तो हमारे भी है। हमारे मकान में भी किरायेदार रहते हैं लेकिन क्या करें—गांव काफी दूर है ना और फिर वह मकान हमारे किस काम का। क्योंकि मैं तो यहां हूं।"

"बातें बाद में बनाना पहले मटके के नीचे बर्तन रखो।" वह बोली। मैंने मटके के नीचे बर्तन रखते हुए कहा, 'अब तो ठीक है ना!"

शाम को खाना खाकर चैन की सांस ली। फिर रेडियो लगाकर मैं गुनगुनाने लगा तो तुरंत ही मकान मालिक आए और बोले, "जनाब, रेडियो बिल्कुल ही धीरे बजाओ और साथ में यह गुनगुनाना बंद करो।"

जब गर्म-गर्म ये शब्द मेरे कानों में पड़े तो सारा मूड ही खराब हो गया। सोचा—आज ही तो आया हूं और कितनी बार सुनना पड़ा है। मैंने रेडियो बंद करते हुए कहा, "ये लो साहब, आपको पसंद नहीं है तो भला मैं क्यों रेडियो बजाऊं।" मैंने खिसियाते हुए कहा, "वैसे रेडियो का तो

बोलो कैसी पार्टी चाहिए ?"

तब मेरे एक सहपाठी ने कहा, "आपके कमरे में खीर बनाकर खाएंगे।" मैं मन-ही-मन घबराया कि मकान मालिक क्या कहेगा···इस भय से मैंने कहा, "होटल में अच्छी पार्टी दे देंगे।"

तो दूसरा साथी बोला, "अच्छा ! खर्चे से डरते हो···पार्टी लेंगे तो कमरे में ही···नही तो साफ-साफ इकार कर दो।"

मैंने कहा, "ठीक है, पार्टी कमरे में ही होगी।"

ज्योंही शाम ढली। चारों दोस्त आ धमके। मैं कमरे के बाहर बैठकर खीर पकाने लगा तो एक दोस्त बोला, "खीर कमरे में पका लो। क्या मोहल्ले वालो को दिखा रहे हो कि हम दोस्तों को खीर खिला रहे हैं ?"

उस वक्त मौसम तो कडाके की सर्दी का था। पर मैंने बहाना बनाते हुए कहा, "नही, ऐसी बात नही है। कमरे के अदर गर्मी लग रही है।"

खीर बनकर तैयार हो गई और हम खाने बैठे ही थे कि मकान मालिक आया और बोला, "ए मिस्टर, कमरे में फालतू लडको को मत आने दो।"

"बौऊ जी, ये तो मेरे सहपाठी है।" मैंने कहा।

"होंगे सहपाठी। लेकिन इन्हे कह देना आइंदा यहा नही आए···हमारे घर में बहू-बेटिया रहती हैं।"

मैंने हाथ जोड़कर कहा, "बौऊ जी, आपके बहू-बेटिया हैं तो वे हमारी मा-बहिन हैं। पर ये ऐसे-वैसे नही है, जैसा कि आप सोच रहे हैं।" मेरे इतना कहने पर वे चले तो गए, मगर साथ-ही-साथ पार्टी का मजा तो किरकिरा कर गए।

एक दोस्त बोला, "यार, ये भी कोई मकान मालिक है। हमारा अगर ऐसा मकान मालिक हो तो हम आज ही मकान खाली कर दें।"

मैं उस समय चुप रहा। क्या बताए साहब, मैंने तो वह कमरा रहने के लिए लिया था ना कि खाली करने के लिए। क्योंकि मुझे पता था कि अगर कमरा छोड़ दिया तो अलादीन का चिराग लेकर ढूढ़ने पर भी नया कमरा नही मिलेगा और वैसे अगर कोई मकान मालिक किसी किरायेदार

को निकाल दे तो दूसरा मकान मिलना उतना ही मुश्किल हो जाता है जितना कि एक लड़की का रिश्ता टूट जाने पर नया रिश्ता मिलना।

पर जनाब, हमने तो मकान मालिक के बिना कहे ही यानी महीना पूरा होने के बीस दिन पहले ही कमरा खाली कर दिया और तीन दिवसीय कड़े संघर्ष के बाद नया कमरा ढूंढने में कामयाब हो गए लेकिन वहा भी वही डफली और वही राग।

मकान मालिक बोला, "बिजली से रेडियो मत बजाओ।"

"बाऊजी, इसमें छः वोल्ट का एलीमिनेटर है। इससे बिजली का खर्चा नहीं आता।" मैंने कहा।

लेकिन साहब, वे बड़े जिद्दी थे, बोले, "मेन स्विच बंद कर दूंगा अगर रेडियो बंद नहीं किया तो।"

मैंने उनका स्वभाव देखते हुए रेडियो को झट से बंद करके संदूक में कैद कर दिया और उसके एक किलो से भी अधिक वजन के एक पुराने-से ताले को लगाकर चाबी छिपा दी कि कहीं भूल से मैं रेडियो बजा न बैठूं।

फिर रात को सोया तो कमरे का दरवाजा खटखटाते हुए मकान मालिक बोले, "रात को बल्ब बुझाकर सोओ।"

मैंने कहा, "बाऊ जी, यह तो जीरो वाट का है इससे मीटर नहीं सरकता।"

वे बोले, "मीटर चलता नहीं है तो फिर ये जलता कैसे है?" तो साहब, अंधेरे में सोने की आदत नहीं होने पर भी मुझे अंधेरे में ही सोना पड़ा क्योंकि किरायेदार जो ठहरा। पर नींद कहां आने वाली थी। कारण, कमरे में उनके मकान के अंदर से बिल्ली से भी बड़े-बड़े चूहे आते और मैं प्राइमरी स्कूल के अध्यापक की भांति बेबस उन चूहों की ऊधमबाजी सुनकर भी अनसुना कर देता।

इस कमरे में भी ज्यादा रहना हमारे नसीब में न था। तो मैं नया कमरा ढूंढने निकल पड़ा और एक जगह आशा की किरण दिखाई दी परन्तु मकान मालिक के द्वारा लिए गए संक्षिप्त-से इंटरव्यू में थोड़े हड़बड़ाकर संभल गए।

सवाल किया गया कि, "क्या आप शादीशुदा हैं?"

मैंने कहा, "अजी, आप शादी की बात करते हैं मेरी बीवी के तो एक बच्चा भी है। पर क्या करें, बीवी एक महीने से नाराज होकर मायके चली गई।"

बेचारा मकान मालिक रहमदिल था और शायद पत्नी पीड़ित भी। कमरा दे दिया। लेकिन झूठ आखिर कहा तक चलता। मकान मालिक को पता चला कि मैं कुवारा हू तो उनके द्वारा दिए गए तीन दिन के नोटिस ने हमारे मनोमस्तिष्क को विचलित कर दिया और अत मे वही होना था जो ईश्वर को मजूर था यानी कमरा खाली करना पडा।

इस कमरे को खाली करने के बाद दूसरे दिन ही मुझे नया कमरा मिल गया तो चैन की सास ली। लेकिन सुख यहा भी नसीब न हुआ।

मकान मालिक बोला, "शर्मा जी, अपने मोटर साइकिल को मकान से दूर ही बद करके लाया करो और दूर ही स्टार्ट किया करो। क्योंकि भड़···भड ··भड·· की आवाज से हमारे डागर डरते है।"

मैंने इनके आदेश को सहर्ष स्वीकार किया। फिर एक रोज हमारे एक मित्र बहुत दूर से यानी उदयपुर से चलकर मुझसे मिलने आए और बोले, "भाई मेरे, मेरा यहा ट्रासफर हो गया है। इसलिए कोई मकान दिलवाओ।"

मैंने कहा, "मिया, क्या पहले कोई मकान किराये पर लिया है यानी कभी किरायेदार रहे हो ?"

तो दोस्त हँसते हुए बोला, "नही, ऐसा सौभाग्य मेरा कहा भला !"

मैंने कहा, "सौभाग्य है या दुर्भाग्य, ये तो बाद की बातें हैं। आज एक चुटकला सुनाओ और जोरदार-सा, जिसे सुनते ही मन 'मडोर-गार्डन' हो जाए।"

दोस्त मजाकिया मिजाज का था अतः फौरन ही एक चुटकला सुना डाला। चुटकला ऐसा सुनाया था कि अगर गधा सुनता तो वह भी हँस देता। फिर हम तो आखिर आदमी थे। लेकिन यह क्या ? हमारे हँसते ही मकान मालिक कमरे मे ऐसे घुसे जैसे सूने खेत मे साड घुस जाता है। वे बोले, "जनाब, कमरे मे हँसना मना है।"

मैंने कहा, "क्या हँसना मना है ! · तो क्या हम···?"

वे मेरी बातचीत में ही काटते हुए बोले, "हा-हां, हँसना मना है।"

इतना कहकर वे चलते बने। अब आप ही बताइए मैं उन्हें क्या कहता। हास्य के वातावरण में मौत जैसा सन्नाटा छा गया, लेकिन क्या करें। कमरे में रहना था ना, इसलिए चुप ही रहे और कभी हँसने का मूड बनता तो कमरे से बहुत दूर किसी पार्क में मित्रमण्डली में बैठकर हँस लेते। फिर कमरे में आते ही रोनी सूरत बनाकर रहना पड़ता। पर इस तरह कितनेक दिन चलता। आखिर दूसरा कमरा लेना ही पड़ा।

इस बार जो कमरा मिला, उसके मकान मालिक ग्यारह बच्चों के बाप बेचारे बड़े भले आदमी थे। बस थोड़ा-सा ही कष्ट सहन करना पड़ा था मुझे।

वह यह कि आफिस अक्सर पैदल ही जाना पड़ता क्योंकि मोटर साईकिल तो उनके यानी मकान मालिक के बड़े साहबजादे ले जाते और साईकिल उनके छोटे वाले। शुक्र है मेरे पास बच्चों वाली साईकिल नहीं थी। नहीं तो उस लेन वाले यानी चलाने वाले सपूत भी वहां मौजूद थे, जो कभी-कभी कहते, "अंकल जी, हमें भी साईकिल ला दो ना।"

उनकी बातें सुनकर मैं धीरे से कहता, "बेटा, अब साईकिल मुझे बना ला।" वैसे देखा जाए तो कसर ही क्या छोड़ी थी उन लोगों ने।

पर करें क्या? किरायेदार थे ना और अब तक सब कुछ सहन करते हुए भी किरायेदार बने हुए हैं तथा नये-नये अनुभवों का आनंद उठा रहे हैं।

लुत्फ रेडियो-मरम्मत के

जब एशियाड के ओलम्पिक खेल शुरू होने वाले थे। सब लोग धड़ाधड़ टेलीविजन खरीद रहे थे। कुछ लोग रंगीन टी० वी० लगाने के चक्कर में थे। बाकी बचे-खुचे लोग अपने-अपने रेडियो ठीक करवा रहे थे। मेरे पास भी आदम के जमाने का एक बिजली सेट पड़ा था। मैंने सोचा—क्यों न मैं भी इसे ठीक करवा लूं।

गृहमंत्री ने कहा, "अरे भई सुनती हो बबलू की मां! इस रेडियो को किसी कपड़े में बांध दो। तुम भी क्या याद रखोगी कि ओलम्पिक खेल का कार्यक्रम नहीं सुना।"

धर्मपत्नी रेडियो की शौकीनी में मुझसे चार कदम आगे थी। सो झट से आज्ञा का पालन किया और एक नये बिस्तर की चादर उतारकर रेडियो पैक करके रुने दे दिया।

अब मैं सोच रहा था—कब नौ बजे, कब बाजार खुले और कब रेडियो ठीक हो। उस वक्त पड़ौसी के रेडियो से सलमा आगा की आवाज में 'निकाह' फिल्म का गाना आ रहा था। हमारा दिल भी मचलने लगा। फिर मैंने पड़ौसी की ओर मुखातिब होकर कहा, "बेटा! दोपहर तक रुक जा, फिर देखना हमारे रेडियो की आवाज।" आखिर मुझसे घर बैठा नहीं गया तो साढ़े आठ बजे ही मैं रेडियो उठाकर बाजार की तरफ चल दिया।

रास्ते में जब मैं स्टेशन से होकर गुजरा तो टी० टी० ई० साहब ने

पकड़ लिया और बोले, "टिकिट दिखाओ।" मैंने कहा, "हम लोकल आदमी हैं।" टी० टी० ई० बोला, "ये बिस्तर एक तरफ रखकर खड़े हो जाओ, तुमसे बाद में निपटूंगा।" लगभग आधे घंटे बाद टी० टी० ई० ने मुझसे कहा, "चौंसठ रुपये निकालो और ये लो रसीद।" मैंने कहा, "साहब, पहले तो आपको यह बता दूं कि यह बिस्तर नहीं, रेडियो है और मैं जयपुर से नहीं, बल्कि घर में आ रहा हूं।" जल्दी-जल्दी में मैंने चादर उतारकर रेडियो भी दिखा दिया।

जैसे-तैसे दो-तीन जानकार आदमी मिल गए। कह-सुनकर टी० टी० ई० से पीछा छुड़ाया और चादर में रेडियो को पुनः बांध ही रहा था कि इतने में रेडियो इंस्पेक्टर साहब आ धमके और लगे लाइसेंस पूछने। मैंने कहा, "साहब, लाइसेंस तो घर पड़ा है।" लेकिन वे पूरे घाघ थे। मेरी बात को ताड़ गए और बैग में से एक फार्म निकालकर मेरा नाम-पता पूछने लगे।

मेरे दिमाग में एक आइडिया आया। उन्होंने ज्योंही नाम पूछा—मैंने अपने पड़ोसी का नाम बता दिया। लेकिन मौके पर आकर मेरे दुश्मन जैसे मित्र ने किये-कराये पर पानी फेर दिया। मित्र ने मेरे नजदीक आते हुए कहा, "और भाई रामलाल, क्या हालचाल है? कैसे खड़े हो यहां?" मैंने सुनकर भी अनसुना कर दिया और इंस्पेक्टर साहब से बोला, "साहब, आप जल्दी से फार्म भर लीजिए। मुझे देर हो रही है।" उस वक्त मेरा मित्र मुझे पूरा नारद नजर आ रहा था। मैंने मन-ही-मन सोचा, 'बेटे, अब पोल खुलेगी। एक तो लाइसेंस नहीं है और ऊपर से झूठ बोल रहा है।"

अब दोस्त भी नजदीक आ चुका था। उसने आते ही मेरे कंधे पर धौल जमाते हुए कहा, "यार, कब से आवाज लगा रहा हूं और आप हैं कि जनाब···" दोस्त की बातचीत में काटते हुए इंस्पेक्टर साहब बोले, "आपने अभी-अभी अपना क्या नाम बताया था?" मैंने कहा प्रेमलाल। वे बोले, "अच्छा! इतनी जल्दी बदल गए···रामलाल वर्मा नहीं लिखवाया था?"

उस समय मेरी हालत कसाई के बकरे की सी हो रही थी, लेकिन मैंने

गाहरा बटोरकर कहा, "साहब, आपको गलतफहमी हो गई होगी। साथ ही मैंने अपने दोस्त की तरफ दायी आंख दबा दी। आंख का असर हुआ। दोस्त ने भरपूर सहयोग दिया। आखिर फार्म पर 'साइन' करके पीछा छुड़ाया और रेडियो उठाकर स्टेशन से बाहर निकला।

अब मुझे रेडियो बहुत भारी लग रहा था। मैं धीरे-धीरे कदमों से रेलवे स्टेशन के नजदीक ही 'झुमरी तलैया रेडियो सेंटर' जा पहुंचा। मुझे देखते ही वहा बैठे रेडियो मैकेनिक के चेहरे पर रंगत आ गई। वह बोला, "आइये, आइये भाई साहब···हम आपकी क्या सेवा कर सकते है!"

मैंने कंधे से रेडियो उतारते हुए कहा, "ये रेडियो ठीक करवाना है।" इतना सुनना था कि वह रेडियो से चादर इस तरह उतारने लगा जैसे कोई कसाई पशु की खाल उतार रहा हो। जल्दबाजी मे चादर कुछ फट भी गई। लेकिन मैं चुप रहा, क्योकि रेडियो जो ठीक करवाना था।

रेडियो देखते ही वह बोला, "वाह! कितना धाकड रेडियो है। इसे अभी चैक करता हूं।" फिर रेडियो का पिछला ढक्कन खोलते ही वह बोला, "भाई साहब, यह रेडियो तो इग्लैण्ड का बना है। आपने इसे घर पर खोला था?" मैने कहा, "हा, खोलकर सफाई की थी।" मेरे इतना कहने पर वह गम्भीर मुद्रा बनाते हुए बोला, "खैर, सफाई तो करनी ही पडती है। तभी तो हम यहा बैठे हैं।" मैंने कहा, "रेडियो मे खराबी देखिए। यों पहेलिया क्यो बुझा रहे हैं।" वह बोला, "पहेलिया नही बुझा रहा हू, मैं तो कह रहा था कि आपकी ··नही···नही···मेरा मतलब है रेडियो की एक ट्यूब बुझ गई है। यानी एक ट्यूब खराब है···लगभग पचास रुपये लगेंगे।"

पचास का नाम सुनते ही मुझे चक्कर से आने लगे। क्योकि एक लेखक की जेब से पचास रुपये का निकलना, उसके महीने के सारे बजट को हिला देना था। फिर मैं तो घर से बीस रुपये लेकर ही चला था। मैंने रेडियो को चादर मे बाधते हुए कहा, "चलो छोड़ो, बाद में ठीक करवाएगे।" और मैं वहा से रवाना होने लगा, तो वह बोला, "भाई साहब, जा कहां रहे हो? पाच रुपये टेस्टिंग फीस के तो देते जाओ।" मैंने कहा, "टेस्टिंग फीस! लेकिन आपने तो कुछ भी नहीं किया···फिर फीस

काहे की?" वह बोला, "बस, यहां इसी बात के पैसे लगते हैं…रेडियो ठीक करवाएंगे, तब टेस्टिंग फीस नहीं देनी पड़ेगी।"

मैं भी अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। मैंने कहा, "रेडियो तो पहले से ही खुला था और आपने पचास रुपये की चादर फाड़ दी वह अलग।" पर उसने मेरी एक न सुनी। वह ज़ोर से बोला, "सुबह-सुबह माथा-पच्ची मत करो। आप पांच रुपये निकालो पहले, बाद में सुनाना अपनी राम कहानी।" काफी कहा-सुनी के बाद आखिर मैंने उसे पांच का सड़ा-सा नोट दे दिया और रेडियो उठाकर चौक में आ गया।

वहां से मैं सीधा 'गुलगुलिया रेडियोज़' पर जा पहुंचा। दुकान पर पहुंचते ही मैंने रेडियो मैकेनिक से कहा, "मिस्त्री जी, मेरा रेडियो ठीक करना है।" फिर मैंने धीरे-धीरे चादर से रेडियो निकालकर उसके हाथों में थमा दिया।

वह रेडियो को खोलकर चैक करने लगा। लगभग दस मिनट बाद वह मुझसे बोला, "आपने पहले किससे चैक करवाया था?" मैंने कहा, "किसी से नहीं।" वह बोला, "भाई साहब, झूठ बोलने से कोई फायदा नहीं। रेडियो तो किसी का चैक किया हुआ है। तभी तो देखो, दो हजार के रेडियो का सत्यानाश हो गया।"

उसका इतना कहना था कि मैं धम से वहां पड़े बैंच पर बैठ गया और उसका मुंह देखने लगा। मैंने मन-ही-मन सोचा 'यह ज्योतिषी है या रेडियो मैकेनिक। इसे कैसे पता चला कि मैंने रेडियो चैक करवाया है?'

वह बोला, "सोच क्या रहे हो? इसमें एक ट्यूब खराब है और दूसरी ट्यूब है ही नहीं।" मैंने कहा—"क्या! एक ट्यूब नहीं है? लेकिन वह तो कह रहा था कि बस एक ट्यूब खराब है।" वह मुस्कराते हुए बोला, "मैं कह रहा था न आपने इसे कहीं चैक करवाया है।" मैं मायूस होकर बोला, "तो अब क्या होगा?" उसने कहा, "इसे ठीक करवाने में लगभग सत्तर रुपये लगेंगे।"

सत्तर का नाम सुनते ही मेरी आंखों के आगे तारे नाचने लगे। मैंने कहा, "इसे फिर ठीक करवा लेंगे। अभी बंद कर दो।"

वहां भी पांच रुपये टेस्टिंग फीस देकर पिंड छुड़ाया और रेडियो उठा-

"यार ओम जी, क्यूँ जले पर नमक छिड़क रहे हो।" और मैंने उन्हें अपनी सारी गम कहानी सुना दी।

दोस्त सुनकर मन-ही-मन हँसा और सहानुभूति जताते हुए बोला, "मेरे एक दोस्त हैं—'स्वाईतेक रेडियो वाले'। उन्हें रेडियो दिखाते हैं, वे ठीक कर देंगे।"

दिल तो नहीं मानता था लेकिन उनके कहने के ढंग को देखते हुए मैं उनके साथ हो लिया। वहाँ रेडियो चैक करवाया तो मैकेनिक साहब बोले, "यार ओम भाई, इसमें तो कुछ भी नहीं बचा है। कुल खर्चा लगभग एक सौ सत्तर का पड़ेगा, लेकिन तुम मेरे 'खास' हो और ये तुम्हारे दोस्त हैं, इसलिए एक सौ साठ में काम चला लेंगे।"

मैं मुँह फाड़े उनकी बातें सुन रहा था और सोच रहा था कि कहाँ आ फँसे।

फिर मैकेनिक साहब मुस्कराते हुए पूछने लगे, 'क्या आपको ओलम्पिक खेलों की कमेंटरी सुननी है?" मैंने छोटे बच्चे की मानिंद शर्माते हुए 'हाँ' में सिर हिला दिया। मेरी हालत पर शायद दया आ गई थी उन्हें। तभी मेरे कंधे पर हाथ रखते हुए वे बोले, "ऐसा है, मेरे पास किसी ग्राहक का पाकिट सैट पड़ा है। आप ले जाओ और कमेन्ट्री सुनने के बाद लौटा देना।"

मुझे उस वक्त वे मैकेनिक साहब बड़े अच्छे लग रहे थे। मैंने वहीं से [illegible] पाँच रुपये में उस पाकिट सैट के लिए दो सैल खरीदे और अपना रेडियो व पाकिट सैट लेकर उन्हें साधु-साधु धन्यवाद देता हुआ अपने घर की तरफ चल पड़ा। चलते-चलते मैं तीन दिन के बारे में सोचने लगा। अचानक राह के रोड़े की ठोकर खाकर मैं चारों खाने चित। रेडियो कहीं और मैं कहीं। और पाकिट सैट चारों दिशाओं में बिखर चुका था। मैं मन मसोस कर रह गया। घर पहुँचा तो देखा कि साढ़े बारह बज चुके हैं। पड़ोसी का रेडियो अब भी गा रहा था, 'दुनिया के मेले विराने मेरे बैठा !"

साथ ही पूछ के गुणो के बारे मे व्याख्यान दिए। यहां तक कि उसे अखबार मे फोटो छपवाने, आकाशवाणी और दूरदर्शन से समाचार प्रसारित करवाने तथा विदेश भ्रमण का भी लालच दिया। कई बार उसे प्रसिद्ध विदेशी नेता से पुरस्कार दिलाने का भी आश्वासन दिया। लेकिन दोस्तो, उस पर मेरी बात का रत्ती भर भी असर नही हुआ। मुझे कभी-कभी दुख भी होता, पर मैंने हिम्मत नही हारी। कभी मैं अपने मोती पर गर्व भी करता कि यह अपनी परपरा को कायम रखे हुए है और लालची नही है। इसे न छपने की भूख है, न प्रसारित होने की और न ही किसी तरह का इनाम पाने की।

तो दोस्तो, खुशी की बात यह है कि मैंने इस शोध पर कुछ हद तक सफलता पा ली है। दरअसल हुआ यो कि एक दिन आकाशवाणी से मेरी व्यग्य वार्ता 'कुर्सी की महिमा' प्रसारित हो रही थी। तब मोती उसे एकाग्रचित होकर सुन रहा था और तभी मैंने महसूस किया कि उसे कुर्सी बहुत प्यारी लगने लगी है। वह अब कुर्सी देखते ही उस पर छलाग लगाकर जा बैठता है और मेरे लाख मना करने पर भी उतरने का नाम नही लेता। आजकल यह कुर्सी पर बैठता है। कुर्सी पर सोता है। कुर्सी पर खेलता है और कुर्सी पर ही भौकता है।

मैं खुश हू कि मेरे इस शोध को एक आधार मिल गया है। मोती को दिन मे कई बार मैं अब निर्देश भी देता हू कि यदि पूछ सीधी नही रखी तो कुर्सी छीन ली जाएगी या फिर कभी उसे धोबी के घर भेजने की धमकी देता हू। इस भय से वह अपनी पूछ अब 'इंश' की तरह रखने लगा है। लेकिन मुझे पता चला है कि मेरी गैरहाजिरी मे अपनी पूछ को अंग्रेजी के पद्रहवें अक्षर 'ओ' की तरह कर लेता है। ऐसी स्थिति को मद्देनजर रखते हुए मैंने निर्णय लिया है कि मै अब जब भी ड्यूटी पर जाऊगा, तो मोती को अपने साथ रखूगा। साथ ही मैंने कुर्सी के नीचे पहिए लगाने का भी विचार किया है।

देखना यह है कि मुझे इस शोध मे कहा तक और कब तक सफलता मिलती है। जिस दिन मैं इस शोध मे पूर्ण सफलता हासिल कर लूगा। उस दिन मैं अपने-आपको विश्व मे सबसे ज्यादा भाग्यशाली समझूगा।

सुख अखबारनवीसी का

पत्रकारों के ठाठ-बाट देखकर मैंने सोचा कि बेरोजगारी के धक्के खाने की बजाय क्यों न मैं भी श्रमजीवी पत्रकार बन जाऊं। ताकि महगाई के इस जमाने में महीने की महीने तनख्वाह की तो गारंटी हो।

यह मेरा सौभाग्य ही समझिए कि हमारे पच्चीस हजार की आबादी के इतने बड़े कस्बे में एक भी पत्रकार नहीं था। वैसे जिले से अनेक अखबार निकलते थे। मैं सभी अखबारों को अपना समझता था लेकिन कोई सपादक मुझे अपना पत्रकार कहने में हिचकता था, क्योंकि मैं कोई समाचार कभी किसी समाचार पत्र में भेज देता तो कभी किसी में। और विज्ञापन तो केवल मैं उन्ही अखबारों को भेजता जो कि मुझे ज्यादा-से-ज्यादा कमीशन देते। धीरे-धीरे मेरी ख्याति बढ़ती गई। मैं सभी सपादकों की नजरों मे चढ़ गया।

एक दिन एक सपादक जी का लालच और प्यार-भरा खत मिला। खत पढ़कर मैं उनसे मिलने को आतुर हो उठा और बस में जा बैठा। लगभग चार घंटे तक बस में धक्के खाने के बाद उनके दर्शन हुए। फिर आधे घंटे की बातचीत और चाय-नाश्ते के बीच मुझे उन्होंने अपने समाचार पत्र का पत्रकार बना दिया। सपादक जी ने मुझसे अनुरोध किया कि मैं अपने अखबार का कार्यालय दूसरे शहर में जाकर खोलूं ताकि वहां अखबारों की सप्लाई करवाने के साथ-साथ उस क्षेत्र से ज्यादा-से-ज्यादा विज्ञापन जुटा सकूं। यानी विज्ञापन लेना प्रमुख कार्य था। अखबार सप्लाई करवाना

और मूल कारण फलाशा अभाव और योग थे। खैर साहब, कुछ भी हो, ये तो सब अपनी-अपनी नीतियां और व्यवस्थाएं हैं।

मैंने खुशी-खुशी नए शहर में पदार्पण किया। आते ही अखबार बाटने वाला रखा। कार्यालय खोला। औपचारिक उद्घाटन के बाद काम शुरू। शहर में सभी प्रतिष्ठित जगहों पर अखबार फिकवाए। फिकवाने से मेरा तात्पर्य आप समझ ही गए होंगे। तीन-चार दिन तक काम नियमित ढग से चलता रहा। फिर कभी अखबार समय पर नही आते तो कभी अखबार बाटनेवाला। कभी-कभी तो तीन-चार दिन के अखबार एक साथ बटते। फिर जैसे ही महीना पूरा हुआ, मैंने बिल बुक की रसीदें काटकर हॉकर को यानी अखबार बाटने वाले को थमा दी।

शाम होते ही थका-हारा हॉकर लौटा और कड़ाके की सर्दी मे माथे से पसीना पोछते हुए बोला, "दयाल जी, मुझसे तो यह काम नही होता।"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "क्यो, अखबार बाटना क्या बुरी बात है ?"

हॉकर बोला, "भाई साहब, अखबार कोई प्रसाद तो है नही, जो बाट दिया और भूल गए। बताओ, महीने भर सौ अखबार बाटे और सौ रुपये भी इकट्ठे नही हुए। जबकि कमीशन के हिसाब से मेरे ढाई सौ रुपये बनते है।"

मैंने पूछा, "तो क्या दस जनो ने ही पैसे दिए हैं ?"

"दे तो कोई नही रहा था। दसो से भी झगडा करके लाया हू। बाकी नब्बे तो मरने-मारने पर उतारू हो गए। कहने लगे, 'किसे पूछकर के दे जाते थे ?' अब आप ही बताइए, मैं क्या जवाब देता ?"

मैंने अखबार के मुख्य कार्यालय मे जाकर प्रधान सपादक जी को मरियल-सी आवाज में सारी स्थिति से अवगत कराया। तब उन्होंने मुझे पहले तो बढ़िया-से होटल मे फर्स्ट क्लास खाना खिलाया और फिर दूध मे पत्ती डलवाकर दो बार चाय पिलाई। इस बीच मेरी हिम्मत की दाद देते रहे और अत मे कधे पर थपकी देकर वापस भेज दिया।

मैं फिर वही लौट आया यानी पुनः उसी शहर मे आ गया। कई जगह रिक्वेस्ट करके अखबार बधवाए। विज्ञापनो के लिए हाथाजोड़ी की।

मुझे अब शहर के अनेक प्रतिष्ठित नागरिको के अलावा पान-पॉलिश

वाले भी पहचानने लग गए थे। हॉकर को मैंने बार-बार चाय पिलाकर 'मोटीवेट' किया। तब कहीं जाकर वह अखबार बाटने पर राजी हुआ।

अखबार के मुखपृष्ठ पर रोजाना दो-दो डिग्रियों सहित मेरा लंबा-चौड़ा परिचय छपता तो मैं फूलकर गुब्बारा हो जाता। शहर के अनेक व्यक्तियों से अब 'नमस्कार' का आदान-प्रदान भी कुछ ज्यादा ही होने लगा था। अखबार के लिए विज्ञापन भी बिना मांगे मिलने लगे थे। दिन में बीसियों बार चाय हलक में उतरने लगी थी। कुल मिलाकर मेरी 'गुडविल' अच्छी-खासी बन गई थी कि अचानक हॉकर ने सारा मामला बर्फ में लगा दिया। उसे न जाने क्या सूझी या फिर भगवान् जाने किसी दूसरे अखबार वाले ने तीर चलाया हो, उसने अखबार बाटने बंद कर दिए। मैंने एक जवाई की तरह उसकी गर्ज की, लेकिन वह टस-से-मस न हुआ।

मैंने दूसरे हॉकर को तलाश किया। लेकिन आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जबकि बेकारी के इस युग में किसी भी कीमत पर कोई भी हॉकर नहीं मिला। तो साहब, मैं रात भर करवटें बदलता रहा। सुबह अखबार का बंडल आ गया। मैंने बंडल में से एक अखबार निकाला और पढ़ना शुरू किया ही था कि फोन की घंटी घनघना उठी, "हैलो शर्मा जी, आज अखबार नहीं आया, क्या बात हो गई?"

"अभी भेज रहे हैं, हॉकर आने ही वाला है।" मैं बस यही कह-कहकर टालता रहा। दोपहर हो गई। शाम हो गई। रात भी हो गई। मुझे चिंता सताने लगी। कभी पत्रकारिता की इस नौकरी को कोसता तो कभी अपनी तकदीर को।

दूसरे दिन सुबह जल्दी ही बंडल आ गया। अखबारों का वह बंडल मुझे साप की टोकरी-सी लग रहा था। मेरी बंडल खोलने की हिम्मत नहीं हो रही थी। मैंने सोचा, "जैसे ही बंडल खोलूंगा, लोग पूछ बैठेंगे कि—अखबार क्यों नहीं बंटा?—तो मैं क्या जवाब दूंगा। आखिर लोगों को कब तक टालता रहूंगा। बकरे की मा आखिर कब तक खैर मनाएगी।" बस, फिर जिसका डर था वही हुआ। फोन-पर-फोन आने लगे।

पास-पड़ोस के कई भाई-बंधु आकर अपनी दुकानों पर अखबार न पहुंचने की शिकायत करने लगे और दो दिनों तक के अखबार पहुंचाने का

बुढ़ापे को नमस्कार

बचपन की बात है। जब मैं बच्चा होता था और वह भी बिल्कुल जिद्दी स्वभाव का। कभी कोई खाने की चीज या खिलौना लेने की जिद् कर लेता तो उसे पूरा करके ही छोड़ता। चाहे इसके लिए मुझे पांच-सात मिनट अश्रुपूर्ण रुदन और शेष एक घंटे तक बिना आंसुओं के ही रोना, चीखना और चिल्लाना पड़ता। अन्ततः अपनी मांग पूरी करवा के ही सांस लेता।

उस वक्त मैं सोचता था कि बच्चे अपनी जिद् केवल रो-धोकर ही पूरी कर लेते हैं। इससे पहले मैं रोने-धोने को कोई खास महत्त्व नहीं देता था। वह तो भला हो हमारी पड़ोसी आंटी का, जिसने मुझे अपना गुर सिखाकर दुनिया से विदाई ले ली। वह हमेशा अपने पतिदेव यानी हमारे पड़ोसी अंकल के आगे चार घड़ियाली आंसू बहाकर अपनी इच्छा पूरी करवा लेती। चाहे साड़ी लेनी हो या चप्पल। चाहे गोलगप्पे खाने हों या फिर फिल्म देखनी हो। सब मर्जों की एक दवा 'सिर्फ चार बूंद आंसू।' इधर आंटी जी की पलकें भीगतीं और उधर अंकल जी का दिल पसीज जाता। लेकिन एक दिन न जाने भगवान् ने अंकल जी की फरियाद सुन ली थी या फिर संयोग ही था, स्टोव फटा और आंटी जी विदा। खैर साहब, मौत के अनेक बहाने हैं और जीने के कई सहारे।

बचपन में मैं कई बार सोचता कि जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो नौकरी करूंगा। फिर जेब में खूब सारे पैसे होंगे। जो इच्छा होगी वह खरीदूंगा। मनमर्जी की चीजें खाया करूंगा।

अखबार मगा रहे हैं।

मैं कहता, "अभी दे रहा हू बेटे। ये समाचार पूरा पढ़कर दे देता हू।" तो अदर से हमारे लाडले बेटे की रोबीली आवाज आती, "पिताजी, आप के लिए कोई जरूरी नही है कि आप चाय की चुस्की के साथ अखबार पढ़ें। आप तो अखबार सार्वजनिक पुस्तकालय में भी पढ़ सकते हैं। मुझे को अखबार दे दीजिए। मुझे ऑफिस को देर हो रही है। लाडले की दहाड़ सुनकर मैं समाचार पढ़ना भूल जाता और अखबार उसके लाडले को देकर नहाने-धोने के काम म जुट जाता। इस काम से निबटता नही कि पाच रुपये और थैला देते हुए पोती कहती, "दादा जी, मम्मी ने कहा है कि बाजार से सब्जी ला दो। इस बार सब्जी पूरे पैसो की लाना। मम्मी कहती है कि दादा जी पैसे बीच मे मार जाते हैं।"

ऐसा सुनता तो मेरा खून खौल उठता। मैं कहता, "अच्छा! तो मैं पूरे पैसे की सब्जी नही लाता! जा अपनी मम्मी से कह दे। मैं सब्जी नही ला सकता।"

मेरे थोड़ा-सा जोर से बोलते ही अपने दूसरे नबर के लाडले की आवाज आती, "पिता जी, आप बच्चो से क्यू झगड रहे हैं। आप बच्चे हैं क्या? या बुढापे में आपका दिमाग सठिया गया है। जाइए'' बाजार जाइए ' और जल्दी से सब्जी ला दीजिए ''इस बहाने आपकी सैर भी हो जाएगी।"

और मैं चुपचाप पाच का नोट और थैला लिए घर से बाहर चला जाता। सब्जी वगैरह लाकर जैसे ही अपने कपड़ो के प्रेस करता तो बहू कहती, "पिता जी, आप नन्हे को कुछ देर खिला लीजिए। प्रेस बाद में कर लेना। आपको ऑफिस तो जाना नही है। आपको तो घर पर ही रहना है।"

मैं क्या कहता। मेरे पास उनकी किसी भी बात का जवाब नही था। मै बच्चा होता था, तब सोचता था कि बडे बुजुर्गों के मौज-मस्ती होती है। लेकिन ऐसे दिन देखने पडेंगे, मैंने सपने मे भी नही सोचा था। यदि पहले ऐसा पता होता तो रिटायरमेंट के टाइम मिली सारी राशि मैं मकान पर क्यूं लगाता। और यदि मकान पर लगा ही दी, तो मकान तो कम-से-कम

अपने नाम मे रखता।

हमारी पत्नी जी हमारे ही घर मे नौकरो की तरह जीवन काट रही थी। घर मे चौका, बुहारी और बर्तन वगैरह साफ करने के काम उसके हिस्से मे थे। मैं तो दुखी था ही, सुखी वह भी नही थी। पर बेचारी वह कुछ नही बोलती। मेरे रिटायरमेंट के बाद उसने हसना तो दूर कभी जुबान भी नही खोली।

एक दिन मैंने सोचा, खाली बैठे हैं। इससे तो अच्छा है, पास-पडोसियो के बच्चे ही पढा दू। बच्चो को महीने दो महीने बडी लगन के साथ पढाया। लेकिन सब पडोसियो ने चाय पिला-पिलाकर यह कहकर टाल दिया कि, "आपका यही तो सुख है। आप कितने अच्छे हैं।"

बस, घर से बाहर इतना सम्मान मिलने पर मैं फूला नही समाता। मैं सोचता कि यदि मैं इन बच्चो को नही पढाऊगा तो ये फेल हो जाएगे और अपना फर्ज समझते हुए कई वर्षों तक पढाया। कुछेक ने तो फ्री मे पढना भी मुनासिब नही समझा। कहते, "ना जी, बूढा क्या पढाएगा। एक चाय के लिए मरता है।"

मैं फिर भी चुप रहता। पढाने का क्रम चलता रहा। उसके बाद मैं बाजार जाता तो एक-दो पोते या पोतियां मेरे कधे पर होते और एकाध अगुली पकडे मेरे साथ-साथ। लोग हाल-चाल पूछते, "और सुनाओ जी।" मैं ऊपर से खीसें निपोरता हुआ कहता, "अजी मस्ती मार रहे हैं। आप सुनाइए।" लेकिन मैं जानता था कि मेरी वास्तविक स्थिति कैसी है। मैं अदर-ही-अदर कुढता रहता। हीन-भावना से भर उठा था मैं। जीवन मे एकाकीपन-सा आ गया था और जीने की लालसा भी खत्म होने लगी थी।

बुढापे के साथ-साथ अब तबीयत भी कुछ नर्म रहने लगी थी। नीद तो पहले ही कम आती थी, लेकिन जब से खासी आनी शुरू हुई है, तब से मेरे अलावा अपने सपूतो और बहूओ की नीद मे भी बाधा बन गया हू। क्या करू, बुढापा चीज ही ऐसी है। छिहत्तर साल की उम्र भी तो कोई कम नही होती। बुढापा तो है, साथ ही खासी भी लग गई। यानी करेला और वह भी नीम चढा।

एक बार बहू की आवाज़ मेरे कानों में पड़ी। अपने पतिदेव यानी हमारे लाड़ले से फरमा रही थी—"यह बूढ़ा न मरता है और न पीछा छोड़ता है।" मैंने सुना तो मानो किसी ने मेरे कानों में जैसे गर्म-गर्म सीसा उड़ेल दिया हो। मैं सुनकर घर से कुछ दूर चला गया ताकि किसी को और परेशान न हो। बुढ़ापे को नमस्कार।

र्थात् कैसे ?'

मैंने कहा, "ठहर जा, अंग्रेज के बच्चे। अभी बताता हूं तुझे। मुझसे सवाल-जवाब करता है?" इतना कहकर मैं उसे मारने दौड़ा तो वह अपनी दुम दबाकर "व्हाई ''व्हाई ''" अर्थात् डबल्यू० एच० वाई व्हाई यानी क्यों?

जनाब, आप मानेंगे नहीं, मेरे रॉकी ने अपने शागिर्द को भी अंग्रेजी सिखा दी, जो कि उम्र में उसके पिता समान था। मैंने सोचा, वाह! क्या पिल्ला है। इसे तो ओलम्पिक खेल में शामिल होने के लिए रूस की राजधानी मास्को भेजना चाहिए था, मुझे उस पर पक्का विश्वास था कि अगर पिल्लों की कोई प्रतियोगिता वहां रखी जाती तो मेरा रॉकी अवश्य ही 'स्वर्ण पदक' जीत कर लाता। लेकिन क्या करें, बेचारा पहले ही स्वर्गवासी हो गया।

खैर! जो आया है, उसे एक दिन अवश्य जाना है, किसी को पहले तो किसी को बाद में। लेकिन जनाब, मेरा रॉकी समय से बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो गया।

मेरा रॉकी विलायती नहीं, बल्कि देसी था। यह सब कुछ तो मैंने आपको पहले ही बता दिया था। रॉकी ने सारे करतब सीख लिए थे, लेकिन उसमें एक कमी थी और वह यह कि बकरी के कानों की भांति नीचे लटकते हुए उसके लंबे-लंबे कान। इसी एक कमी के कारण मेरा प्यारा पिल्ला रॉकी, बिलकुल अनपढ़ व गंवार लगता था।

उसके कानों के बारे में सोचता-सोचता एक दिन मैं रॉकी को साथ लेकर पशु चिकित्सक के पास पहुंचा और समस्या बतायी।

डॉक्टर साहब बोले, "यहां अस्पताल से कुछ कैल्सियम की टिकिया और कैल्सियम पाउडर ले जाओ। नियमित रूप से इसे सुबह-शाम खिलाते रहना। अभी यह बच्चा है। इसलिए इसके कान खड़े हो सकते हैं।"

मुझे तो इसके कान खड़े करने थे यानी बकरी जैसे कानों को अल्सेशियन कुत्ते के कानों की भांति।

रॉकी को मैं नियमित रूप से पाउडर व टिकिया खिलाता रहा और

दिन बीत गए। एक दिन मैंने महसूस किया कि मेरा प्यारा पिल्ला रॉकी गुड़गुड़कर कोई नई बोली बोलने की कोशिश कर रहा है और उसकी नई बातें मैं समझ ही सकता था—कि जब छोटे भाई-बहिन अंग्रेजी के 'पोयम्स' जोर-जोर से बोलकर याद करते तो वह बड़े ध्यान से सुनता। मैंने सोचा, "इसमें भी कोई राज है।" यह सोचकर मैंने जोर से आवाज लगाई, "रॉकी..." लेकिन ऋषि विश्वामित्र की भांति तपस्या में तल्लीन रॉकी मेरी आवाज कैसे सुनता! तो मैंने नारद नीति अपनाई और रॉकी को बड़े प्यार से आवाज दी, "रॉ · की · !" लेकिन प्रत्युत्तर में रॉकी गुर्राया। मैंने जो सोचा था, वही हुआ। अब समझता मैं कि आखिर बात क्या है। रॉकी ने गुर्राकर कहा था कि—हू···यानी कि डब्ल्यू. एच. ओ. अर्थात् हू माने कौन ?

मेरा पिल्ला मुझे ही पहचानने से इकार कर रहा था। मुझी से पूछ रहा था कि, "तुम कौन हो ?" मैंने सोचा, आजकल आदमी, आदमी को पहचानने से अगर इकार करता है तो कोई नई बात नहीं है, क्योंकि जानवरों में तो वफा आज भी मौजूद है, जिसके बरक्श मेरा पिल्ला मुझे पहचानने से इकार कर रहा था, यानी मेरे साथ बेवफाई कर रहा था। मुझे बहुत दुःख हुआ।

मैंने कहा, "प्यारे, अंग्रेजी सीख रहा है, यह तो ठीक है। पर मुझे पहचानने से इकार कर रहा है। यह कहां का इंसाफ है?" फिर मैंने बड़े शहशाही लहजे में कहा कि "हम तुम्हारे आका हैं रॉकी।" यह सुनते ही रॉकी जोर से बोला, "हाऊ···हाऊ' 'यानी कि एच० ओ० डब्ल्यू० हाऊ

अर्थात् कैसे ?'

मैंने कहा, "ठहर जा, अंग्रेज के बच्चे। अभी बताता हू तुझे। मुझसे सवाल-जवाब करता है?" इतना कहकर मैं उसे मारने दौड़ा तो वह अपनी दुम दबाकर "व्हाई ''व्हाई ''" अर्थात् डबल्यू० एच० वाई व्हाई यानी क्यों ?

जनाब, आप मानेगे नही, मेरे रॉकी ने अपने शागिर्द को भी अंग्रेजी सिखा दी, जो कि उम्र मे उसके पिता समान था। मैंने सोचा, वाह ! क्या पिल्ला है। इसे तो ओलम्पिक खेल मे शामिल होने के लिए रूस की राजधानी मास्को भेजना चाहिए था, मुझे उस पर पक्का विश्वास था कि अगर पिल्लों की कोई प्रतियोगिता वहा रखी जाती तो मेरा रॉकी अवश्य ही 'स्वर्ण पदक' जीत कर लाता। लेकिन क्या करें, बेचारा पहले ही स्वर्गवासी हो गया।

खैर ! जो आया है, उसे एक दिन अवश्य जाना है, किसी को पहले तो किसी को बाद मे। लेकिन जनाब, मेरा रॉकी समय से बहुत पहले ही स्वर्गवासी हो गया।

मेरा रॉकी विलायती नही, बल्कि देसी था। यह सब कुछ तो मैंने आपको पहले ही बता दिया था। रॉकी ने सारे करतब सीख लिए थे, लेकिन उसमें एक कमी थी और वह यह कि बकरी के कानो की भांति नीचे लटकते हुए उसके लबे-लबे कान। इसी एक कमी के कारण मेरा प्यारा पिल्ला रॉकी, बिलकुल अनपढ़ व गवार लगता था।

उसके कानो के बारे में सोचता-सोचता एक दिन मैं रॉकी को साथ लेकर पशु चिकित्सक के पास पहुचा और समस्या बतायी।

डॉक्टर साहब बोले, "यहा अस्पताल से कुछ कैल्सियम की टिकिया और कैल्सियम पाउडर ले जाओ। नियमित रूप से इसे सुबह-शाम खिलाते रहना। अभी यह बच्चा है। इसलिए इसके कान खड़े हो सकते है।"

मुझे तो इसके कान खड़े करने थे यानी बकरी जैसे कानो को अलसेशियन कुत्ते के कानो की भांति।

रॉकी को मैं नियमित रूप से पाउडर व टिकिया खिलाता रहा और

लगभग सभी यात्री हँस पड़े।

हँसते-मुस्कराते सफर अच्छा कट गया। लेकिन शहर पहुंचते ही मुझे रॉकी की याद सताने लगी। घर छोटे भाई को पत्र लिखा कि रॉकी का पूरा-पूरा ध्यान रखना और पत्र जल्दी देना। प्रत्युत्तर में कुछ दिन बाद उसका पत्र आया तो पता चला कि रॉकी स्वर्ग सिधार चुका है।

हुआ यों कि छोटे भाई ने रॉकी को एक दिन अधिक मात्रा में पाउडर खिला दिया। इस आशा के साथ कि शायद इसके कान जल्दी ही ऊंचे हो जाएंगे। लेकिन जनाब, अधिक मात्रा में पाउडर खिलाने से पाउडर उसके तालू में चिपक गया, जिससे उसने खाना-पीना छोड़ दिया। चूंकि पाउडर से पिल्ले के कान तो नहीं, बल्कि टांगें अवश्य ऊंची हो गईं। तो आप समझ गए होंगे कि वह बेचारा मेरा प्यारा पिल्ला रॉकी अल्ला को प्यारा हो गया।

रोजाना दिन मे कई बार उसके कानो की तरफ बड़ी गौर से देखता। मगर उसके कान तो अंगद के पाव की भांति अपनी ही जगह जमे रहे।

कुछ ही दिनों बाद मैंने गांव से शहर जाने का प्रोग्राम बनाया। और तैयारी करने लगा। रॉकी को न जाने कैसे इसकी भनक मिल गई। मैं जहा भी जाता, रॉकी मेरे पीछे लगा रहता। उसका मासूम चेहरा देखकर मुझे उस पर तरस आ गया। एक शाम मैं उसे लेकर बस स्टैंड की ओर चल पड़ा, क्योंकि सुबह शहर जाने का प्रोग्राम था। सोचा कि बस जाने का समय आदि पूछ आऊ।

बस स्टैंड पहुंचकर मैंने पूछताछ कार्यालय से बस जाने का समय व किराया पूछने के बाद कहा, "भाई साहब, मेरे इस रॉकी का तो किराया नही लगेगा न ?"

रोडवेज कर्मचारी ने रॉकी की ओर देखते हुए कहा, "इसका ! इसका तो डबल किराया लगेगा भई !"

"डबल कैसे ?" अभी तो यह एक महीने का ही हुआ है और आपके नियमानुसार तीन साल तक के बच्चे का तो टिकिट भी नही लगता।" सफाई पेश करते हुए मैंने कहा। कर्मचारी ने मुस्कराते हुए स्पष्ट किया "भैया, यह जानवरो की श्रेणी मे आता है इसलिए।"

अंत मे मैंने निर्णय लिया कि रॉकी को अब बाद मे ही ले जाएंगे। फिर रॉकी की सारी जिम्मेदारी मैंने छोटे भाई आनद को सौप दी।

दूसरे दिन मै प्रातः ही सूटकेस लेकर बस स्टैंड पहुंचा और टिकिट लेकर बस मे बैठ गया। उस वक्त मेरे साथ ही सीट पर बैठा एक व्यक्ति अपने लडके को कुछ बातें समझा रहा था, "बेटे, कडक्टर पूछे तो इतनी उम्र कम बतानी है।" बेटे ने पूछा, "क्यों पापा ?" पिता ने कहा, "क्योंकि ऐसा करने पर तुम्हारी आधी टिकिट लगेगी।"

खैर साहब, कुछ देर बाद बस रवाना हुई। कडक्टर टिकिट पंच करने लगा। कुछेक सवारियों को टिकिटें काट-काट कर देने लगा। जब हमारी सीट के पास आया तो उसने लडके से पूछा, "कौन-सी कक्षा मे पढते हो बेटे ?" लडका कुछ देर तो इधर-उधर देखता रहा। फिर अपने पिता से पूछने लगा, "कितनी कक्षाएं कम बताऊं पापा ?" यह सुनते ही बस मे बैठे

लगभग सभी यात्री हँस पड़े।

हँसते-मुस्कराते सफर अच्छा कट गया। लेकिन शहर पहुचते ही मुझे रॉकी की याद सताने लगी। पर छोटे भाई को पत्र लिखा कि रॉकी का पूरा-पूरा ध्यान रखना और पत्र जल्दी देना। प्रत्युत्तर में कुछ दिन बाद उसका पत्र आया तो पता चला कि रॉकी स्वर्ग सिधार चुका है।

हुआ यों कि छोटे भाई ने रॉकी को एक दिन अधिक मात्रा में पाउडर खिला दिया। इस आशा के साथ कि शायद इसके कान जल्दी ही ऊंचे हो जाएंगे। लेकिन जनाब, अधिक मात्रा में पाउडर खिलाने से पाउडर उसके तालू में चिपक गया, जिससे उसने खाना-पीना छोड़ दिया। चूंकि पाउडर से पिल्ले के कान तो नहीं, बल्कि टांगें अवश्य ऊंची हो गई। तो आप समझ गए होंगे कि वह बेचारा मेरा प्यारा पिल्ला रॉकी अल्ला को प्यारा हो गया।

राज़ की बात

आज मैं आपको एक राज की बात बताने जा रहा हूं। चूकि राज की बात अपनो को ही बताई जाती है और फिर आप मेरे लिए कोई बेगाने थोड़े ही हैं।

देखिए जनाब, आप मंद-मद मुस्करा रहे हैं कि मै तो 'जान न पहचान, मैं तेरा मेहमान' वाली बात कर रहा हू। लेकिन जनाब, मेरी 'अलिफ' से 'बे' बनाने की कोई आदत नही है। और न ही 'मखमली जूता मारना' पसद करता हू। मैं तो हर काम (एक-दो छोडकर) खुले मे करना ज्यादा पसद करता हू। तभी तो आज सार्वजनिक रूप से आपको राज की बात बताने जा रहा हू।

आप सोच रहे होंगे कि कोई चुनावी नेता 'थोथी बाते' करके अपना उल्लू सीधा कर रहा है। जी नही, मैं कोई नेता नही हू बल्कि एक साधारण-सा लेखक हू और चुनाव मे खडे होने का फिलहाल मेरा कोई इरादा नही है।

आप यह भी न समझे कि मैं आपका कीमती समय नष्ट करके केवल अपना समय गुजार रहा हू, या यू ही दूर की हाक रहा हू। जी नही जनाब, मेरे हिये की अभी तक फूटी नही है। बाद का कह नही सकता, जो दूर की हाकता फिरूं या फिर एक-एक की दस-दस बनाऊ। चूकि मेरा कोई दुश्मन नही है और मैं समझता हू कि किसी से दुश्मनी लेना, यमराज से वारंट कटवाने के समान है। इस कारण मैं आपको राज की बात बताना अत्यत आवश्यक समझता हू।

बात दरअसल यह है कि जब बचपन में मैं काफी छोटा था, तभी से पाठशाला में जाना शुरू कर दिया, लेकिन पढ़ना बाद में शुरू किया। उन दिनों हम सब विद्यार्थी हिंदी के मास्टर जी से इतना डरते थे कि उन्हें देखते ही सर्दी में भी पसीना छूटता था।

काफी लंबा-चौड़ा थुल-थुल शरीर था उनका। इतने बड़े शरीर पर तरबूज जैसा सिर, आलू जैसी नाक, गोभी जैसे गाल, नीबू जैसी आखें, नारियल-सा मुंह और तोरई की मानिंद मोटी-मोटी मूछें जो हमेशा यों तनी रहती मानो घंटाघर की घड़ी में दोनों सुइयां दस बजकर दस मिनट पर आकर ठहर गई हो।

मास्टर जी जब दहाड़ते तो ऐसा लगता जैसे तोप से गोला छूटा हो। उनकी दहाड़ सुनकर सबकी घिग्घी बंध जाती। हमारा हिंदी का कालांश जब भी आता तो मैं और मेरे सहपाठी हरदम नौ-दो-ग्यारह होने का ही प्रयास करते।

एक दिन हम सबने सोचा कि इस तरह धूल फांकने में कोई फायदा नहीं। हो सकता है, ऐसा सोचना हमारी शिक्षा प्रणाली में हो रहा परिवर्तन रहा हो। साथ ही हमने यह भी महसूस किया कि मास्टर जी में भी कुछ बदलाव आ रहा है।

उन्होंने हमारी जूतों से खबर लेना छोड़ दिया और वे हमसे अब खुलकर बातें करने लगे थे। अब पढ़ाई के मामले में हमने किसी भी बात को तोते की तरह रटना छोड़ दिया और कोई बात याद न होने पर हमारे चेहरे पर अब हवाइयां भी नहीं उड़ती थी। हां, इतना कुछ बदलाव आने पर भी हमारे मास्टर जी की मूछें बीरबल की बकरी ही बनी रही, जिसके न दो बाल झड़े और न चार बाल उगे।

अब मास्टर जी ने हिंदी के पीरियड में हमें पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अलावा अन्य बातों की जानकारी देना भी आवश्यक समझा, कक्षा में आते ही उन्होंने हमसे कहा, "बच्चों, तुम अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए कोई ऐसा सवाल पूछो जो कि आउट ऑफ कोर्स हो।"

उनकी बात सुनकर हम सब बच्चे एक-दूसरे का मुंह ताकने लगे। लेकिन फिर साहस बटोरकर मैंने डरते-डरते सवाल किया, "मास्टर जी,

मेरा सवाल सुनकर मास्टर जी अपने मूछों पर हाथ फेरते हुए बड़ी प्रसन्न मुद्रा बनाकर बोले, "प्यारे बच्चो, मूछें मर्द की शान है। आदमी की इज्जत को मूछ से ही आका जाता है। तुम्हे पता है औरतों को बारात में इसलिए नही ले जाते कि उनके मूछें नही होती। वर्तमान में यह लागू नहीं है। और तुम्हे जानकर आश्चर्य होगा कि मेरी मूछ के एक बाल की कीमत एक लाख रुपया है।"

मास्टर जी की बातों से प्रभावित होकर मेरा एक सहपाठी बोला, "तो इसका मतलब मास्टर जी आप अरबपति हैं?"

"बिल्कुल, इसमे क्या शक है! तुम अभी बच्चे हो। मूछ की कीमत क्या जानो।" मास्टर जी ने सीना तानते हुए गर्व से कहा।

उस समय मास्टर जी की बात का हम सबके बाल मन पर क्या प्रभाव पड़ा यह तो मैं नही कह सकता, लेकिन उस वक्त मैंने निश्चय किया था कि जब भी बडा होऊंगा, मूछें जरूर रखूंगा।

अब मैं कुछ और बड़ा हो चुका था। फिर ज्योंही मेरी भूरी-भूरी मूछों ने जन्म लिया तो मुझे लगा कि मैं अब जवान हो रहा हूं। अब मैं बड़ा खुश रहने लगा। जब-जब समय मिलता, तब-तब मूछों पर हाथ फेरते हुए दोस्तों में अपनी मूछ की बड़ी धौंस जमाता। तब कुछ बिना मूछ के लोग मेरी मूछें देखकर जलते और मुझे मूछ मुड़ाने को कहते।

और आजकल मेरी बीवी भी मुझे बार-बार कहती रहती है, लेकिन मैंने अपनी प्राणप्यारी छब्बीस इंच लम्बी (आजानु (घुटने तक)) मूछों के झण्डे इस लालच में गाड़ रखे हैं ताकि इक्कीसवीं सदी में कोई उच्च स्तर का पुरस्कार हासिल कर सकूं। निकट भविष्य में इन मूछों पर मधु मक्खियों का छत्ता पालने का विचार भी कर रहा हूं। ध्यान रहे, दाढ़ी रखने में मेरा विश्वास नहीं है क्योंकि दाढ़ी में तिनका [illegible] दिखाई देते हैं।

अब आप मेरी इन मूछों के राज से वाकिफ हो गये होंगे और [illegible] से भी। तो जनाब, आपसे मेरा इतना ही निवेदन है कि आप [illegible] के माध्यम से मेरी धर्मपत्नी को "मूछ महिमा" और उसके [illegible] का बोध कराकर इस राज को राज ही रहने दें और किसी से न [illegible] करेंगे, प्लीज।

रामलाल की वापसी

मदूत से नजरें मिलते ही रामलाल ने भाप लिया कि अब दिन पूरे हो चुके। फिर भी उसने परलोक जाना मुनासिब नही समझा और एक सौ अस्सी ग्री का कोण बनाता हुआ यमदूत के चरणो मे पसर गया।

यमदूत झट से दो कदम पीछे हटता हुआ बोला, "रामलाल, धर्मराज ी का हुक्म है। अब तो चलना ही पडेगा। चाहे कितनी ही चापलूसी रो, काम नही बनने का और न ही आपके लोक की भाति यहा कोई रिश्वत काम करेगी।"

रामलाल ने सोचा, यमदूत ढीठ है। यह नही मानेगा और वह उस के साथ हो लिया। कुछ ही पलो मे वे दोनो धर्मराज जी के दरबार मे पहुच गए। वहा पहुचते ही रामलाल ने धर्मराज जी के आगे हाथ जोड-कर निवेदन किया, "भगवन्, गुस्ताखी माफ करे। मैं आपका रिकार्ड रजिस्टर देखना चाहता हू।"

धर्मराज जी गरजे, "कलियुगी मानव, तू किस पर शक कर रहा है··· जानता है?"

"रामलाल साठ डिग्री के कोण पर गर्दन झुकाते हुए बोला, "धृष्टता के लिए क्षमा करे महाराज, मैंने आप पर किसी तरह का शक नही किया है। मैं तो आपके अधीनस्थ कर्मचारियो की कार्यप्रणाली के बारे मे सोच रहा था कि इनसे कही कोई गलती भी तो हो सकती है।"

धर्मराज जी राजसिंहासन के हत्थे पर अपना दाहिना हाथ मारते हुए

बोले, 'असंभव। ऐसा कदापि नहीं हो सकता। हमारे सभी कर्मचारी मधुमक्खी की तरह काम में लगे रहते हैं। आपके लोक की तरह दीमक नहीं, जो विकास भी सभी घोषणा करके ही दम लें। और तुम्हें पता है हमारे यहां सात दिन का सप्ताह होता है''पूरे सात दिन का। आपके वहां कहीं सात दिन का तो कहीं छः दिन का सप्ताह होते हुए भी सब निठल्ले घूमते रहते हैं।"

"लेकिन महाराज, आपको हमारे लोक की बुराई करने का कतई अधिकार नहीं है। आपका लोक कौन-सा दूध का धुला है। मैं चाहता हूं कि आपके रजिस्टर में मेरा रिकार्ड ध्यान से देखा जाए। मुझे शक है कि मैं यहां समय से पूर्व ही बुला लिया गया हूं। अगर मेरी बात पर गौर नहीं की गई तो मैं आज से ही भूख हड़ताल पर बैठता हूं।"

"बड़े अजीब आदमी हो!" धर्मराज जी बोले।

"अजीब नहीं हूं महाराज, यह तो हक की लड़ाई है। हक के लिए लड़ना मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है। उसको मैं पाकर ही रहूंगा।" कहकर रामलाल धर्मराज के सामने ही पालथी मारकर बैठ गया।

"रामलाल, इस तरह करने से तुम्हारी दाल यहां नहीं गलेगी। मैं तुम्हारे लोक को अच्छी तरह जानता हूं कि वहां क्या हो रहा है।"

"होना क्या है महाराज, सब लोग आराम से रह रहे हैं।" रामलाल ने दृढ़ता से कहा।

"उसे तुम आराम कह रहे हो! जहां दिन-दहाड़े लोगों की हत्यायें हो रही हैं। मंत्री, नेता, अधिकारी सरकारी खजाने के बल पर देश-विदेश की सैर कर रहे हैं। अधीनस्थ कर्मचारी कार्यालयों में चाय-पान कर रहे हैं। कालेजों में छात्र तथाकथित इश्क फरमा रहे हैं। अध्यापक स्कूलों में बीड़ियां पी रहे हैं। कोई रिश्वत ले रहा है। कोई दे रहा है। रिश्वत लेते हुए पकड़ा गया तो रिश्वत देकर छूट गया। पुलिस इज्जत लूट रही है और अबलाएं लुटी जा रही हैं। बच्चे बेचे जा रहे हैं। बहुएं जल रही हैं। मानव का मानव से विश्वास उठ गया है।"

"लेकिन महाराज, हमारे देश में लोकतंत्र है और लोकतंत्र में सब कुछ चलता है।"

"कमाल है !"

"कमाल नही है महाराज 'अब मुझे बातों में मत लगाइए और मेरे कीमती समय को मद्देनजर रखते हुए कृपया रिकार्ड रजिस्टर मगवाए। मुझे विश्वास नही होता कि आपका रिकार्ड सही है।"

"रिकार्ड पर शक मत करो रामलाल। अगर हमारे रिकार्ड में कोई गलती नही पाई गई तो देखना इसकी तुम्हे सजा मिलेगी। बराबर मिलेगी।"

"मुझे मजूर है महाराज।"

धर्मराज जी ने जन्म-मृत्यु दर पजिका मगवाई। जाच की तो गलती पाई गई। लेकिन उन्होंने अपने चेहरे पर ऐसे कोई भाव नही आने दिए जिससे कि रामलाल को पता चल सके। धर्मराज जी दुविधा मे पड गये।

रामलाल बड़ा घाघ था। धर्मराज जी का चेहरा देखते ही भाप गया कि माजरा क्या है।

वह हाथ झटकाकर बोला, "क्यू महाराज, पकडी गई न गलती ! मैंने कितनी बार कहा था कि अपना रजिस्टर देख लो ! लगता है आपके रिकार्डों को कभी 'आडिट' नही होतो ?"

धर्मराज जी धीमी आवाज मे बोले, "नही रामलाल, हमारे लोक मे 'आडिट' की कभी आवश्यकता ही महसूस नही हुई।"

"इस काम के लिए आप मुझे रख लीजिए महाराज। मैं कभी कोई गलती नही करूगा।" रामलाल ने कहा।

धर्मराज जी बोले, "नही, ऐसा कदापि नही हो सकता। मैं अपने लोक मे अमन-चैन चाहता हू, भ्रष्टाचार नही। मेरे लोक मे न्याय होता है, अन्याय नहीं।"

"लेकिन महाराज, आपकी तरफ से मेरे साथ तो यह सरासर अन्याय हुआ है। मुझे समय से पहले ही क्यो बुलाया गया ? इस गलती के बदले मे आप यमदूत से इस्तीफा क्यू नही ले लेते ?" रामलाल ने बाये हाथ की हथेली पर दायें हाथ का घूसा बनाकर ज्यों ही मारा, हाथ चारपाई की 'ईस' से टकराया और उसकी आख खुल गई।

सुख : एक अदद पिक्चर का

"क्यों यार मिया, बडे खुश नजर आ रहे हो···पिक्चर चलने का मूड है क्या ?" मैंने नद्दू से पूछा।

पिक्चर का नाम लेते ही नद्दू का चेहरा फूलगोभी की मानिंद खिल उठा। वह हामी भरते हुए बोला, "मोटर साइकिल गैरेज मे खडा है, बाहर निकालू क्या ?"

मैंने कहा, "नेकी और वह भी पूछ-पूछ।" तो साहब, हमने मोटर साइकिल लिया। पैट्रोल-पम्प से उसमे तीन लीटर पैट्रोल डलवाकर चल पड़े सिनेमा देखने।

वहा पहुचते ही मोटर साइकिल खडा किया और नद्दू कोट की जेब मे हाथ डालता हुआ टिकिट-खिड़की की जानिब बढ़ा। भारी भीड़···गाली-गलौच। टिकिट खरीदना तो दूर, टिकिट खिड़की तक पहुचना भी मुश्किल हो गया। फिर भी मैंने देखा कि नद्दू टिकिट खिडकी तक पहुंचने के लिए जी-जान लगाए जा रहा है। मैं एक तरफ खडा कभी भीड की तरफ देखता तो कभी फिल्मी पोस्टरो को निहारता।

लगभग आधे घंटे बाद नद्दू मुह लटकाता हुआ मेरे पास आया तो मैं मजमून भाप गया थोबडा देखकर। फिर भी मैंने सवाल फेंका, "क्या बात है टिकिटें नही मिली ?" नद्दू ने मरियल-सी आवाज मे सक्षिप्त-सा उत्तर दिया, "नही।" फिर वह अपने कोट की जेब मे हाथ डालता हुआ बोला, "ये लो पैसे और आप भी आजमा लो अपनी ताकत।" पर ये क्या, नद्दू

ने कोट की जेब से अपना हाथ ऐसे निकाला जैसे जेब में पैसे न होकर कोई जहरीला बिच्छू हो।

मैंने आश्चर्य से पूछा, "क्या हुआ? अचानक चेहरे पर साढ़े छः कैसे बज गए?" तो वह हारे हुए जुआरी की भांति बोला, "भाई साहब, मेरी जेब कट गई।"

"क्या, जेब कट गई? अरे, तू सो रहा था क्या?" मैंने उसे झिड़का। फिर मैंने पूछा, "कितने रुपये थे?" तो वह रुआंसी आवाज में बोला, "रुपये लगभग पचास थे, लेकिन साथ में जरूरी कागजात भी चले गये। अब क्या करूं?"

मैंने कहा, "करना क्या है? अब हवा खा।" नट्टू को सहसा मुझसे ऐसी सहानुभूति की आशा नहीं थी। सर्दी के मौसम में भी बेचारे के माथे पर पसीना छूटने लगा।

मैं बोला, "चल छोड़ यार, तुम्हारे पैसे ले जाने वाला कुछ ज्यादा ही जरूरतमंद आदमी था, ले गया तो ले जाने दो, हमें और देगा वो नीली छतरी वाला...।" तब कहीं जाकर नट्टू ने ठंडी आह भरी और मेरी तरफ कातर दृष्टि से देखने लगा।

पिक्चर देखने की उत्सुकता और समय का तकाजा देखते हुए मैंने पेंट की जेब से फौरन बीस का नोट निकाला और उसे इतनी मजबूती से पकड़ लिया कि नट्टू की तरह कहीं मैं भी अपना सिर न मुंडा बैठूं।

मैंने नट्टू का कोट अपने शरीर में फंसाया और उतर गया रणक्षेत्र में एक वीर सिपाही की तरह। मैंने देखा कि टिकिट खिड़की के पास जितने भी लोग खड़े हैं सबने अपनी-अपनी लाइन बना रखी थी। वहां छोटी-छोटी लाइनें थीं। एक लाइन में सिर्फ एक ही आदमी।

मैं भी वहां की संस्कृति और सभ्यता के अनुसार अपनी लाइन बनाने लगा तो भीड़ में से किसी ने मेरी ओर मुखातिब होकर करेले-सी कड़वी गालियों का गुलदस्ता पेश किया। समताभाव को देखकर मैं खून का घूंट पीकर रह गया। नहीं तो उसे धूल चटवाना मेरे बायें पैर का काम था। चूंकि उस वक्त बायें हाथ में कुछ दर्द-सा हो रहा था।

मैंने महसूस किया कि मुझ पर नई-पुरानी अनेक गालियों की झड़ी लग

गई है। लेकिन मुझे तो टिकिट लेना था। भला क्या न करता। सब कुछ सुनता रहा। आखिर टिकिट लेकर ही खिड़की का 'पिंड' छोड़ा।

टिकिट के चक्कर में मेरा सूट तार-तार हो चुका था। नंदू समझदार था, सो बेचारे ने रहम खाकर मुझे अपना कोट दे दिया था। उसी कोट के नीचे मेरा सूट तार-तार होकर भी मेरे शरीर की शोभा बढ़ा रहा था। हां! तो कोट की भी खस्ता हो गई थी। लेकिन उसकी चिंता करने वाला जब मेरे साथ था, तो भला मैं क्यों चिंतित होता।

खैर साहब, मैं मन-ही-मन सोच रहा था कि अगर किसी से ब्लैक में टिकिट ले लेते तो कितना अच्छा रहता। न नंदू की जेब कटती, न उसका कोट फटता और न ही मेरा सूट तार-तार होता। ब्लैक में टिकिट के तीन गुना ही तो ज्यादा लगते, लेकिन टिकिट तो आराम से मिल जाता।

लेकिन अब तो हम टिकिट ले चुके थे। सो धक्का-मुक्की मारते हुए सिनेमा हॉल में घुसे। हॉल दर्शकों से खचाखच भरा था। दर्शकों का हाल बेहाल हो रहा था। हम तो हॉल के एक कोने में सिकुड़ते हुए दीवार से सटकर खड़े हो गए और 'पिक्चर कम धक्के ज्यादा' का आनंद लेने लगे।

पिक्चर क्या थी, बस बकवास ही थी। रही-सही कसर आपरेटर ने पूरी कर दी। उसने अपनी समझदारी से पिक्चर की आखिरी तीन रीलें पहले ही दिखा दी थी। फटी-पुरानी रीलों को नये प्रिंट की पिक्चर बताकर झांसा खूब दिया था सिनेमा वालों ने।

पिक्चर देखने के बाद सभी दर्शकों का चेहरा यों हो रहा था, मानो वे सब कहीं मातम मनाकर आ रहे हों।

हॉल से बाहर आकर हमने अपने-आपको ठीक किया और मोटर साइकिल स्टार्ट करके घर की तरफ रवाना हुए। लगभग चालीस-पचास कदम ही चले थे, कि मोटर साइकिल एक झटके के साथ बंद हो गया।

शायद नलकी में तेल रुक गया हो। यही सोचकर मैंने 'पैट्रोल की' से पैट्रोल चलाकर देखा तो मेरा माथा ठनका। मैंने झट से टंकी का ढक्कन खोलकर देखा तो टंकी खाली थी मेरे दिमाग की तरह।

नंदू आश्चर्य से बोला, "भाई साहब, अभी तीन लीटर पैट्रोल डलवाया था, फिर एक डेढ़ लीटर पैट्रोल इसमें पहले से ही था, सात-आठ किलो-

मीटर जाने में इतना पैट्रोल कैसे खर्च हो गया ?"

मैं मौन रहा। सोचता रहा कि हो न हो, यह काम किसी समझदार आदमी का ही सकता है, लेकिन अब कर भी क्या सकते थे। आखिर रिजर्व पैट्रोल की मेहरबानी से हम घर पहुंचे और बैठक में चाय पीने लगे। काफी देर के बावजूद पैट्रोल की बात दिमाग से नहीं निकल रही थी।

अचानक मेरी नजर बाहर गली की ओर पड़ी तो देखा कि एक व्यक्ति पांच लीटर का गैलन उठाए हमारी ओर ही आ रहा है। उसकी बढ़ी हुई दाढ़ी, मैले-कुचैले कपड़े, पैरों में हवाई चप्पल यानी शक्ल-सूरत से वह मन-प्रतिमन उठाईगीर लग रहा था।

वह हमारे नजदीक आया और मेरी ओर उन्मुख होकर बोला, "भ भ'' भाई साहब, पैट्रोल' पैट्रोल 'पैट्रोल चाहिए क्या ?" मैं उसकी बात सुनते ही चौंका।

उसके मुंह से आ रही शराब की भभक ने बैठक का वातावरण बड़ा अजीब-सा बना दिया था।

मैं मन-ही-मन मुस्कराकर, नटू की तरफ उड़ती-सी नजर डालते हुए उस व्यक्ति से बोला, "हां-हां, ले लेंगे भैया' आओ बैठो 'किस भाव से दोगे ?"

वह झूमते हुए बोला, "भाव'''भाव जो आप लगा लो।" इतना कह-कर उसने गैलन एक तरफ रखा और बैठक के फर्श पर ही बैठ गया।

मैंने नटू को आंखों-ही-आंखों में इशारा किया। नटू मेरी चाल समझ चुका था। तभी तो उसने 'भड़ाक' से बैठक का दरवाजा बंद कर दिया और उस आदमी को मजबूती से पकड़ लिया। यह काम इतनी तेजी से किया गया कि वह अजनबी भौंचक्का रह गया। ऐसी स्थिति आ सकती है, शायद उसने कल्पना भी नहीं की थी।

वह अपने-आपको छुड़ाने का प्रयास करने लगा तो मैंने रौबदार आवाज बनाते हुए कहा, "खबरदार'''अगर हिलने की कोशिश की तो अभी पुलिस के हवाले कर दूंगा।"

मेरी चाल कामयाब निकली। पैट्रोल चोरी का ही था। जिसमें शायद

हमारे मोटर साइकिल का पैट्रोल भी शामिल था। उस व्यक्ति ने एक बार और छुड़ाने की कोशिश की, लेकिन इस तरह भागकर कैसे जा सकता था। आखिर पिक्चर का गुस्सा जो उतरना था।

नट्टू बेबस होकर मुझसे बोला, "भाई साहब, आप इसे ठीक कीजिए। मेरे बस की बात नही।"

"मै क्या ठीक करूंगा···इसे तो अब पुलिस वाले ही ठीक करेंगे। मैं अभी फोन करता हू।" इतना कहकर मै जैसे ही मुड़ा—वह आदमी गिड़-गिडाया, "इस बार मुझे माफ कर दो। आईंदा चोरी नही करूंगा।" और मैंने उसे माफ कर दिया, क्योंकि वह हम दोनो से ताकतवर था।

मूड ! मूड !! मूड !!!

मूड वैसे तो अंग्रेजी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ किसी भी कार्य को करने अथवा न करने से लगाया जाता है। आप भी इस शब्द से भली भांति परिचित हैं। जहां कभी भी छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े यानी सबके सब इस शब्द का प्रयोग अवश्य ही करते हैं। सिर्फ शहरों में ही नहीं, बल्कि गांवों में भी इसका प्रयोग धड़ल्ले से किया जाता है। मेरे कहने का मतलब है कि 'मूड' तो कण-कण में व्याप्त है।

मूड का अपभ्रंश है 'खूड', जिसे ग्रामीण किसान भाई अच्छी तरह जानते हैं। अगर खूड सीधा रहता है तो किसान का मूड भी सीधा रहता है। यानी खूड सही तो मूड भी सही।

ऋणात्मक दृष्टिकोण से संस्कृत को मूड की जननी कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि संस्कृत में 'मूढ़' का अर्थ मूर्ख से लगाया जाता है। यानी जब किसी का मूड खराब हो जाता है तो उसका मस्तिष्क ठीक नहीं रहता। ऐसी स्थिति में उसे मूर्खों की श्रेणी में रखें तो गलत नहीं होगा।

इसी संस्कृत के शब्द मूढ से 'मुढ़' की उत्पत्ति हुई है। 'मुढ' जो कि मकान बनाने के काम आती है। अगर मुढ़ सही रहती है तो मकान बनाने वाले मिस्त्री का मूड भी ठीक रहता है और इसी मुढ़ से बना है 'मूढ़ा', जो इतना आरामदायक होता है कि इस पर बैठने वाले का मूड फौरन ठीक हो जाता है।

मूड से अगर 'ऊ' की मात्रा हटा दी जाए तो अंग्रेजी भाषा का शब्द 'मड' अर्थात् कीचड़ बन जाता है। ठीक उसी प्रकार आपके अच्छे-खासे मूड मे कोई बाधा डालता है तो आपकी दिमागी स्थिति भी कीचड की भांति ही तो हो जाती है।

अक्सर मूड अन्योन्याश्रित होता है अर्थात् एक-दूसरे पर आश्रित होता है। जैसे यदि श्रीमान् का मूड खराब है तो श्रीमती जी का मूड खराब हो जाता है और इसी श्रीमती जी के मूड से तो सभी लोग घबराते हैं। इनके मूड को अगर विश्व का सबसे खतरनाक मूड कहें तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। कृपया महिलाएं बुरा न मानें, बल्कि इन्हें तो इस बात पर गर्व होना चाहिए कि इनके मूड के आगे तो बडों-बडो के घुटने टिक जाते है। ऋषि विश्वामित्र की तपस्या भंग करने वाली मेनका को क्या भुलाया जा सकता है ? आज महिलाए अबला न होकर 'स-बला' हैं। चूंकि यह कडवा अनुभव शादी के बाद मुझे बीसियो बार हो चुका है। मैं अकेला ही नही, मेरे कई दोस्त भी पत्नी पीडित है, जिनके कारण उनका मूड लगभग खराब ही रहता है।

एक बार हमारे दोस्त और उनकी श्रीमती जी मे किसी बात पर तू-तू मैं-मैं हो गई। दोस्त ने घर से बाहर आकर गुस्से से कहा, "जी चाहता है, आग लगा दू घर मे।" इतने मे ही उनका लाडला घर से निकला और बोला, "रहने दो पप्पा, चूल्हे मे तो आप आग लगा नही सकते, जिसकी वजह से झगडा हुआ है।"

मैं सयोगवश वही से गुजर रहा था। मैंने कहा, "अरे भाई रामबाबू, आज फिर झगड लिए !"

"क्या बताऊं दयाल जी, मैं तग आ गया हू जिंदगी से। दिन-रात के झगड़े के कारण मेरा हमेशा मूड खराब रहता है।"

मैंने कहा, "भैया, पति-पत्नी तो गाडी के दो पहिये हैं। दोनों को मिलकर रहना चाहिए।" मेरी बात सुनकर दोस्त अपने घर की तरफ इशारा करके बोला, "शर्मा जी, उस ट्रक के पहिये के साथ''' ये साइकिल का पहिया'' कैसे तालमेल बैठेगा ?"

मैंने कहा, "जैसा भी है। अब तो गाडी रूपी इस जिंदगी को खींचते

हुए मूड ठीक रखना ही होगा।"

मूड के मामले में बच्चे भी पीछे नहीं हैं। एक बार मैं एक दोस्त के घर गया तो वहां देखा कि हमारे दोस्त व भाभी जी यानी उनकी श्रीमती जी दोनों मुंह को गुब्बारे की मानिंद फुलाए बैठे थे। मैंने स्थिति देखकर कहा, "भाभी जी, क्यों गुस्सा करती हो" भाई साहब को आराम करने दो न।" इस पर भाभी जी बोली, "पर भैया, ये तो मेरी एक भी नहीं सुनते।" मैंने हंसते हुए कहा, "यह तो आराम करने की बहुत अच्छी शुरआत है।"

इन दोनों का मूड देखकर मैंने उनकी छोटी लड़की पिंकी से पूछा, "क्यों पिंकी बिटिया, तू आज स्कूल नहीं गई ?"

वह बोली, "मम्मी-पापा के झगड़े के कारण मेरा भी आज मूड खराब हो गया।" यह सुनते ही हमारे दोस्त ने गुस्से से कहा, "हा-हा, क्यों नहीं होगा तेरा मूड खराब ' आखिर बेटी किसकी है ' बिलकुल अपनी मम्मी पर गई है।"

तो साहब, आधे घंटे के अथक प्रयास से मैंने उनका मूड ठीक किया और फिर घर लौटा।

एक कवि महोदय मेरे दोस्त हैं। बड़ा अजीब मूड है उनका। वैसे कवि, लेखक, शायर या फिर कोई कलाकार (केवल मुझे छोड़कर) की तो बात ही और है क्योंकि ये बिना मूड किसी से बात भी नहीं करते। हां, कुछ अपवाद हो सकते हैं। जैसे मैं 'बेमूड' के भी बात कर लेता हूं लेकिन कुछ लोग जिनका कि मूड खराब होता है, कतई बात नहीं करते। पर जब इनका बोलने का मूड होता है तो ये इतनी बातें करते हैं, फिर चाहे सामने सुनने वाले का भले ही मूड खराब हो जाए, उसकी कोई परवाह नहीं करते।

हां, तो मैं आपको मेरे दोस्त कवि महोदय के बारे में बता रहा था कि वह जब भी मिलता है, कोई नई कविता को लेकर सुनाने बैठ जाता है। काफी दिनों से उसके दर्शन नहीं हुए। मैंने सोचा, "शायद उसे बुखार हो गया है क्योंकि उस समय मलेरिया का सीजन था।" यही सोचकर मैं उसके घर गया। वहां देखा कि कवि महोदय अपनी कविताएं लिखने में मशगूल थे। मुझे देखते ही बोले, "आज रास्ता कैसे भूल गए शर्मा जी ?" उस समय कविता सुनने का तो मूड था नहीं, फिर भी उन्हें खुश करने के लिए

लो साहब, कविमहोदय नयी कविताए सुनाने। "एक और सुनिए। यह बहुत ही जोरदार है। अरे, यह तो उससे भी बढ़िया है, सुनते ही तबीयत हरी हो जाएगी।"

मैंने कहा, "मित्र, कमरे के बाहर बैठकर कविताए सुनाओ।" वे बोले, "क्यों? यहां क्या है?"

मैंने कहा, "पड़ोसी कहीं यह न समझ बैठें कि मैं आपको पीट रहा हूं।" मेरी बात सुनकर वे नई नवेली दुल्हन की भांति शरमाते हुए दरवाजा बंद करके पुनः उसी राग में अपनी कविताओं का अलाप करने लगे।

क्या बताऊं, कवि महोदय से मैंने बड़ी मुश्किल से पीछा छुड़ाया और बिना चाय पीए ही थका-मांदा घर लौट रहा था कि रास्ते में एक और दोस्त मिल गया, जिसकी शक्ल से लग रहा था कि इसका भी आज मूड खराब है। वह मिलते ही बोला, "यार शर्मा जी, तुम मेरी कुछ मदद करो।"

"कहो, क्या कष्ट है?" मैंने पूछा। मेरी आवाज सुनकर उसने पहले मेरे चेहरे की ओर घूरकर देखा और आश्चर्य से पूछने लगा, "क्या बात है, तुम्हारी तबीयत खराब हो रही है क्या?"

मैंने कहा, "नही, बस यू ही'''फकीरचद जी की कुछ कविताएं सुनकर आ रहा हू। हां, तुम बताओ, क्या मदद चाहते हो ?"

दोस्त बोला, "यार, इस बार परीक्षा के समय अच्छी-अच्छी फिल्में लगी थी ना। इसलिए पढ़ाई का मूड ही नही बना और अब तीसरी बार भी फेल हो गया हूं।"

"तो इसमे मैं क्या मदद कर सकता हू ?" मैंने कहा।

दोस्त बोला, "यार, डैडी को तार कैसे दू कि मैं तीसरी बार भी फेल हो गया।" मैंने हँसते हुए कहा, "बस ! यह तो बहुत ही सरल है। लिख दो परिणाम आ गया है, लेकिन कोई नई बात नही है।" दोस्त सुनते ही बोला, "वाह ! क्या गजब का आइडिया बताया है। सुनते ही मूड ठीक हो गया।" और वह तार देने चला गया। अब सुनाइए कै । मूड है आपका ? अच्छा है ना ?

कर्ज का चस्का

चार्वाक ऋषि ने कहा था 'ऋण कृत्वा घृतं पीवेत्' अर्थात् कर्ज लो और घी पीओ। मैं आपसे क्या छिपाऊ...बस मेरी आदत भी कुछ ऐसी ही है।

मां बताती है कि डेढ़ साल की उम्र में ही मैंने जब से बोलना शुरू किया है, तब से कर्ज लेने की आदत पड़ी हुई है। अब भला आप ही बताए, बचपन की आदत को कोई कैसे छोड़ सकता है और फिर मुझे कोई नुकसान हो तो इस आदत को छोड़ने का प्रयास भी करू।

जहा तक मुझे याद है, शुरू-शुरू मे मुझे कर्ज लेने मे काफी दिक्कतो का सामना करना पड़ता था। वास्तव मे कर्ज लेना बहुत ही कठिन कार्य है। इतने वर्षों बाद अब यह काम कुछ आसान हुआ है क्योकि अब इसकी जटिलता समझ मे आई है। मैंने इसकी बारीकियों का काफी गहराई से अध्ययन किया है और अध्ययन के दौरान कर्ज लेने के अनेक नुस्खे ईजाद किये हैं मैंने। सरकार का ध्यान मेरी इन कारगुजारियो की तरफ अभी तक गया नही है। नही तो 'गीनिज बुक' के फ्लैप पर आज मेरा ही नाम होता या फिर चार्वाक ऋषि आज जिंदा होते तो मुझे निश्चय ही स्वर्ण पदक दिलवाने की सिफारिश करते।

मुझे खुशी है कि इस कर्ज लेने की आदत ने मुझसे कितनी और नई आदतों का परिचय करवाया है और आज मैं उन आदतो का होकर रह गया हू। भले ही मुझे कोई अपना बुरा बताए। लेकिन हम तो स्पष्ट कहने वालो मे से हैं कि हम बुरे नही हो सकते। यदि हम बुरे होते तो परीक्षा मे

पास होने की खुशी से लेकर शर्त हारने की स्थिति तक क्या आपको पार्टी देता? और आपको पार्टी देने के चक्कर में मैंने अलग कर्ज ले लिया तो कौन-सा गुनाह कर दिया! यह कर्ज तो आपने अपनी इच्छा से दिया था। वक्त आने पर मैं भी इसे अपनी इच्छा से लौटा दूंगा।

और तो और अब तो ये शादियों वाली किस्त स्कीम चली हैं, इनसे तो मेरी कर्ज लेने की आदत में चार चांद लग गए हैं। अब महीने में मुझे तनख्वाह तो मिलती है एक बार लेकिन किस्तें चुकानी पड़ती हैं बार-बार। कभी टी० वी० की किस्त, कभी फ्रिज की, कभी अलमारी की तो कभी वाशिंग मशीन की। दोस्तों से बार-बार कर्ज लेता हूं। क्या करूं कर्ज के बिना रहा नहीं जाता।

आपको राज की एक बात और बता दूं कि आजकल मेरी जेब भरी रहने लगी है। जेब नोटों से भरी रहती है। फिर भी न जाने क्यूं किसी परिचित से कर्ज लेने निकल पड़ता हूं। क्या करूं आदत जो पड़ गई है। आदत के मुताबिक मैं किसी खास या परिचित से कर्ज ले लेता हूं और फिर निश्चित समय पर दूसरे मित्र से वही राशि कर्ज लेकर लौटा देता हूं। फिर दूसरे का कर्ज उतारने के लिए किसी तीसरे साथी से कर्ज मांगता हूं। तीसरे को चुकाने के लिए चौथे से और चौथे का कर्ज लौटाने की जब बारी आती है तब मैं पहले दोस्त को याद कर लेता हूं। बस इस प्रकार कर्ज का पहिया निरंतर चलता रहता है।

आप भी यदि किसी परिचित या अपरिचित से कर्ज लेना चाहें तो मेरी तरह निरंतर अभ्यास कीजिए और इस सिद्धांत को उचित ध्यान में रखिए 'करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।''

वैसे मुझे कर्ज लेने के अनेक नुस्खे मौखिक याद हैं। यदि आप सीखना चाहें तो इक्कीस रुपये गुरु दक्षिणा के अवश्य साथ लाएं या धनादेश द्वारा भेजें। बाद में समेत ब्याज तीस फरवरी तक लौटा दूंगा। यह वादा रहा। आपको यह कहने, लिखने का मौका कभी नहीं दूंगा कि 'क्या हुआ तेरा वादा।'

बाज आए ऐसे दोस्तों से

जी हा, दोस्तो के मामले मे ईश्वर मुझ पर इतना मेहरबान है कि सभी दोस्तों के नाम याद रखना मेरे लिए बड़ा मुश्किल हो रहा है। दूसरे शहर या फिर दूसरे मुल्क के दोस्तो का तो जिक्र ही नही है, क्योकि लोकल दोस्त भी इतने अधिक हैं कि मैं जिस रोड से निकलता हू तो वापस आने तक "हैलो" "आप सुनाइए" "बस ठीक है" कहते-कहते घर मे घुसना पडता है।

इसलिए मैं आपके समक्ष आज चद लोकल दोस्तो का ही जिक्र करूगा, जिनकी आदतें कहे या रुचिया वास्तव मे बडी अजीबोगरीब हैं।

हां, तो इनसे मिलिए—ये हैं मेरे दोस्त सुरेश। इन्हे "यह मेरे बाप-दादों ने नही किया, मैं क्या करूगा।" कहने की बहुत आदत है। इस आदत के कारण ये किसी भी बात का सही ढग से जवाब नही दे पाते।

ये एक दिन हमारे घर आए। वैसे घर तो रोज ही आते हैं, रोज आने का अर्थ आप यह न लगा लें कि मैं उनका ऋणी हू, बल्कि इसलिए आते हैं कि मैं इनका दोस्त हू और ये मेरे दोस्त। ये आए तो इनसे मेरे लड़के बबलू ने पूछा, "अंकल, आपने गर्मियो की छुट्टियां मे कभी शिमला-भ्रमण नही किया?" तो दोस्त झट से बोला, "अरे बेटे! शिमला-भ्रमण मेरे बाप-दादों ने नही किया, मैं क्या करूगा।"

फिर कुछ देर तक इधर-उधर की बातें होती रही कि हमारी श्रीमती जी

मेरा मतलब है मेरी श्रीमती जी ने मुस्कराते हुए उनसे पूछा, "सुरेश भैया जी, आपने अब तक शादी क्यों नही की ?" आदतानुसार दोस्त ने बिना सोचे-समझे ही उत्तर दिया, "शादी मेरे बाप-दादों ने नहीं की, मैं क्या करूंगा।" सुनकर हम सभी हँस पड़े। हमारे दोस्त ने जब अपने जवाब पर विचार किया तो वह झेंप गया। फिर "बाद मे आऊंगा, अभी जल्दी है," कहकर चला गया। मैंने पीछे से आवाज लगाई, "मियां, चाय तो पीते जाओ···।" लेकिन वह जा चुका था।

अब आइए इनसे मिलिए—ये हैं मेरे दोस्त सुमन साहब 'सागर'। कहानियां लिखते हैं। इन्होने आज तक सैकड़ो कहानियां लिखी है, लेकिन इनकी कोई भी कहानी किसी समाचार पत्र या पत्रिका में प्रकाशित नही हुई है। इनका कहना है, "सभी पत्रिकाएं बेकार हैं और इन पत्रिकाओं के संपादक अनपढ़ हैं।"

मैंने पूछा, "कैसे ?" दोस्त ने कहा, "वे रचनाएं पढ़ते ही नहीं है। अगर पढ़ते तो अवश्य छापते। जब कोई रचना भेजता हूं, तो वापस आ जाती है। और साथ में एक छपा कागज 'हमे खेद है, आपकी रचना का उपयोग नही कर पाए।' "

मैंने पूछा, "तुमने कैसे जाना कि सभी संपादक अनपढ़ हैं ?"

वह बोला, "आज तक किसी भी संपादक ने हाथ से पत्र लिखकर नहीं

एक दिन अचानक ही वे घर आए तो मैंने कहा, "आइए अकेला जी, आइए…बड़े दिनों बाद दर्शन दिए।" फिर मैंने पूछा, "शादी-वादी करवा ली या अभी अकेले ही हो?"

वे बोले, "क्या बताएं भैया, पत्र तो वैसे कई बहिनों के आए हैं, लेकिन मैंने अभी तक कोई निर्णय नहीं लिया है। तुम्हारी नजर में कोई बहिन हो तो बताना भैया।" मैंने धीरे से कहा, "हां…हां…जरूर बताएंगे, जब भी कोई…नजर आएगी।"

इनसे मिलिए—ये हैं मेरे दोस्त केसरीचंद मालपानी। स्कूल में अध्यापक हैं। बड़ा चिड़चिड़ा स्वभाव है इनका। इन्हें—'ऐसा भी हो सकता है, वैसा भी हो सकता है' कहने की बहुत आदत है। एक दिन इन्होंने अपने लड़के बंटी के जन्म-दिन पर हमें बुलाया। उस दिन इनके घर काफी लोग इकट्ठे हुए। कहीं खूब सारे बच्चे खेल रहे थे, शोर मचा रहे थे, कहीं औरतें खिलखिला रही थीं। घर का वातावरण बड़ा रोमांटिक बना हुआ था।

अचानक हमारे दोस्त मालपानी ने बच्चों की ओर उन्मुख होकर कहा जो कि खूब जोर से शोर मचा रहे थे, "क्यों इतना शोर मचा रहे हो…मैं तुम्हें चुप कराने के लिए इतनी जोर से चिल्ला रहा हूं और तुम हो कि

सुन ही नही रहे हो "आखिर मै गधा हू या भैंसा।" एक लडका जो इनकी आदत से परिचित था, सुनते ही बोला, "ऐसा भी हो सकता है, वैसा भी हो सकता है।" यह सुनकर हम सब लोग हँस पड़े।

तो साहब, हमारे दोस्त मालपानी इन शब्दों को सुनकर पानी-पानी हो गए। और वे तुरत ही पार्टी मे कोई अन्य कार्य करने लगे। उस समय उनका चेहरा देखने लायक था।

अब अत मे मिलाते हैं आपको झूमरी तलैया के भूतपूर्व निवासी याद कुमार 'भुलक्कड' से, जिनका निवास स्थान आजकल यही है। इनमे एक खूबी है कि ये चुटकले बहुत सुनाते हैं और दूसरी विशेषता है कि ये बड़े भुलक्कड हैं।

एक दिन इन्होंने हमे सपरिवार फिल्म देखने के लिए आमन्त्रित किया। हम शाम के चार बजे ही सपरिवार उनके घर पहुच गए। घडी चलती रही—चलती रही। शाम के छः बज गए। 'शो' चालू होने मे आधा घटा शेष था। भाभी जी यानी हमारे दोस्त की श्रीमती जी को गुस्सा आ रहा था कि भुलक्कड जी अभी तक घर क्यो नही आए। दोस्त को जितनी देर हो रही थी, भाभी जी उतनी ही गुस्से मे लाल बम का रूप धारण करती जा रही थी।

काफी देर बाद यानी सात बजे भुलक्कड जी घर आए तो उन्हे अपनी भूल का एहसास हुआ। वे भाभी जी से बोले, "क्यो भागवान, पिक्चर नही चलना है क्या?" भाभी जी गुस्से मे बोली, "आप बात न करिए मुझसे। गुस्से से मेरे दिमाग मे आग लग रही है।" दोस्त भी कम नही था। उसने इधर-उधर सूघते हुए कहा, "ओहो! तभी तो वहू इतनी देर से गोबर जलने की बदबू कहा से आ रही है?"

पिक्चर का प्रोग्राम कैंसिल होना ही था। सो वरीयता अनुसार हम सबका मूड खराब हुआ। मसलन मेरी श्रीमती का, बबलू का और अत मे डाक्टर का। रास्ते मे श्रीमती जी बोली, "आपको भी एक से बढ़कर एक बड़े अजीब दोस्त मिलते हैं।"

मैंने कहा, 'मेरे बबलू की मा, अब लैक्चर बद भी कर। मैं भी बाज आया ऐसे दोस्तो से।"

तेल की खातिर

ट्रन···ट्रन···ट्रन···ट्रन···फोन की घंटी बजी। सुबह-सुबह किसका फोन हो सकता है ? मैं बड़बड़ाया और रिसीवर उठाकर कान के पास ले जाते हुए बोला, "हैलो।"

"हैलो ! जी···मुझे गिरधारी से बात करनी है। प्लीज, बात करवा दीजिए।" उधर से आवाज आई।

"मैं किसी गिरधारी को नहीं जानता।"

"ओह ! तो आप कौन साहब बोल रहे हैं ?"

"मैं 234 से महाप्रयाग बोल रहा हूं।"

"जी···महाप्रयाग जी···नमस्कार। माफ करना, मैंने गिरधारी का फोन मांगा था और घंटी आपकी बज उठी।"

"खैर, कोई बात नहीं। आपकी तारीफ।"

"अजी अपनी तारीफ तो जितनी करो, उतनी ही कम है। वैसे नाचीज को महंगा सिंह कहते हैं।"

"बड़ा अच्छा नाम है। बिल्कुल वक्त के मुताबिक।" मैंने उसे हंसते हुए कहा।

"अजी मेहरबानी है सरकार की, जो हमारा नाम रोशन कर रही है।"

"भाई महंगा सिंह, काम-धंधा क्या करते हो, जरा बताओगे ?"

"अजी, नाम बता दिया है तो अब काम क्या छुपाना। वदा ब्लैक

करता है सिनेमा घर में।"

"आप दूसरों का ही काम-धंधा पूछते रहोगे या घर कुछ काम-धाम भी करोगे!" पत्नी जी दहाड़ती हुई मेरे पास आई।

"माफ करना बंधु, हनिग्रह आ रहा है। फिर कभी फुर्सत में बातें करेंगे।" कहते हुए मैंने तुरन्त फोन कट कर दिया तथा धर्मपत्नी की ओर उन्मुख होकर बोला, "भागवान, ये मुखड़ा प्यारा-प्यारा, क्या हुक्म है तुम्हारा?"

पत्नी बोली, "बस-बस बातें मत बनाओ। किसका फोन था? पहले यह बताओ।"

मैंने मुस्कराते हुए कहा, "धर्मेन्द्र का।"

"बातें बनाना तो कोई तुमसे सीखे। अब तक आदत नहीं गई है। शादी से पहले कहते थे, 'मेरी जान, मैं तेरे लिए आसमान के तारे तोड़ कर ला सकता हूं।' अब तारों की बात तो बहुत पुरानी हो चुकी है जनाब। आज एक काम कीजिए।" पत्नी आदेशात्मक स्वर में बोली।

मैंने हौले से पूछा, "क्या?"

"ये डिब्बा उठाइए और फौरन मिट्टी का तेल ले आइए। खबरदार जो खाली हाथ लौट आए। खाना नहीं बनाऊंगी हां।" पत्नी धमकी देती हुई बोली।

मैं धर्मपत्नी के चेहरे के उतार-चढ़ाव को एकटक देखते हुए मौन रहा तथा आज्ञाकारी पत्नीव्रता का पालन करते हुए डिब्बा उठाया और चल पड़ा मिट्टी का तेल लेने।

गर्मी बड़ी जबर्दस्त थी। मैंने जेब से रेड एंड व्हाइट सिगरेट निकाल-कर सुलगाई और एक पोंगा जवान की तरह [illegible] करता हुआ 'मैशन-ए-स्टाइल' में आ गया हुआ। लाइन में खड़े-खड़े लोगों को काम रहा था कि कमबख्त इन गधों की बात ही [illegible] आना था क्या।

करता है सिनेमा घर मे।"

"आप दूसरो का ही काम-धधा पूछते रहोगे या घर कुछ काम-धाम भी करोगे !" पत्नी जी दहाडती हुई मेरे पास आई।

"माफ करना बधु, शनिग्रह आ रहा है। फिर कभी फुर्सत मे बातें करेंगे।" कहते हुए मैंने तुरन्त फोन काट कर दिया तथा धर्मपत्नी की ओर उन्मुख होकर बोला, "भागवान, ये मुखडा प्यारा-प्यारा, क्या हुक्म है तुम्हारा ?"

पत्नी बोली, "बस-बस बातें मत बनाओ। किसका फोन था ? पहले यह बतलाओ।"

मैंने मुस्कराते हुए कहा, "धर्मेन्द्र का।"

"बातें बनाना तो कोई तुमसे सीखे। अब तक आदत नही गई है। शादी मे पहले कहते थे, 'मेरी जान, मैं तेरे लिए आसमान के तारे तोड कर ला सकता हू।' अब तारो की बात तो बहुत पुरानी हो चुकी है जनाब। आज एक काम कीजिए।" पत्नी आदेशात्मक स्वर मे बोली।

मैंने हौले से पूछा, "क्या ?"

"ये डिब्बा उठाइए और फौरन मिट्टी का तेल ले आइए। खबरदार जो खाली हाथ लौट आए। खाना नही बनाऊगी हा।" पत्नी धमकी देती हुई बोली।

मैं धर्मपत्नी के चेहरे के उतार-चढाव को एकटक देखते हुए मौन रहा तथा आज्ञाकारी पत्नीव्रता का पालन करते हुए डिब्बा उठाया और चल पडा मि[illegible] का तेल लेने।

का प्रयास कर रहा था।

दस बजे दुकान खुली। लाइन में हलचल हुई। सभी ने मोर्चा लिया तेल बिकने लगा। मैं देख रहा था कि दुकानदार के कुछ जानकार लोग बिना लाइन के ही तेल लिए जा रहे हैं।

लाइन के बीच खड़े एक सरदार जी से यह देखा न गया तो वे बोले, "सेठ जी, तुसी आ की करदे हो। रब नू जान देणी है। असी भी लाइन विच खड़े हां!"

"ये लोग दो दिन से खड़े हैं, आपको पता है?" सेठ जी ने रौबदार आवाज में कहा।

सुनकर मेरा दिल बैठने लगा। दोपहर के दो बज गए। तभी एक व्यक्ति तेल लेकर अपने गैलन को उठाते हुए बोला, "सेठ जी, तेल पूरा पाच लीटर नही है, मुझे कम लगता है।"

सेठ जी माथे पर त्योरियां चढ़ाते हुए बोले, "अच्छा! तेल दे दिया इसलिए बोल रहे हो। लेना हो तो लो वरना अपना रास्ता नापो।"

वह व्यक्ति चुपचाप चला गया। कोई कुछ नही बोला। अब लाइन में खड़े लोग बैठने लगे। मैं भी बैठ गया। अकेला खड़ा रहकर क्या करता। कुछ लोग अपने-अपने टिफिन मे से खाना निकालकर खाने लगे। मुझे भी जोरो की भूख लग रही थी। पर क्या करता? तेल ले जाना जरूरी था। श्रीमती जी की डाट बार-बार मेरे कानो मे आ रही थी, "खबरदार, तेल नही लाए तो खाना नही बनाऊंगी। हा।"

शाम के लगभग सात बज गए। भूख के मारे मेरा पेट सिकुड़कर पीठ से चिपक गया। आखिर मेरी बारी आई। बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन सेठ जी ने मुझे पैसे व गेलन लिए बिना आदेश दिया, "आप एक मिनट रुकिए।"

उस वक्त मुझे गुस्सा तो बहुत आया लेकिन मैंने गुस्सा दबाकर बड़े प्रेम से कहा, "सेठ साहब, एक मिनट तो क्या, हम तो एक घंटा भी रुक सकते हैं।"

सेठ जी दुकान के अन्दर गये और एक सुंदर-सी तख्ती लाए और करीने से उसको तेल के ड्रम पर रखते हुए दुकान में घुसकर शटर बंद कर

का प्रयास कर रहा था।

दस बजे दुकान खुली। लाइन में हलचल हुई। सभी ने मोर्चा लिया। तेल बिकने लगा। मैं देख रहा था कि दुकानदार के कुछ जानकार लोग बिना लाइन के ही तेल लिए जा रहे हैं।

लाइन के बीच खड़े एक सरदार जी से यह देखा न गया तो वे बोले, "सेठ जी, तुसी आ की करदे हो। रब नू जान देणी है। असी भी लाइन विच खड़े हां !"

"ये लोग दो दिन से खड़े हैं, आपको पता है ?" सेठ जी ने रोबदार आवाज में कहा।

सुनकर मेरा दिल बैठने लगा। दोपहर के दो बज गए। तभी एक व्यक्ति तेल लेकर अपने गैलन को उठाते हुए बोला, "सेठ जी, तेल पूरा पांच लीटर नहीं है, मुझे कम लगता है।"

सेठ जी माथे पर त्योरियां चढ़ाते हुए बोले, "अच्छा ! तेल दे दिया इसलिए बोल रहे हो। लेना हो तो लो वरना अपना रास्ता नापो।"

वह व्यक्ति चुपचाप चला गया। कोई कुछ नहीं बोला। अब लाइन में खड़े लोग बैठने लगे। मैं भी बैठ गया। अकेला खड़ा रहकर क्या करता। कुछ लोग अपने-अपने टिफिन में से खाना निकालकर खाने लगे। मुझे भी जोरों की भूख लग रही थी। पर क्या करता ? तेल ले जाना जरूरी था। श्रीमती जी की डांट बार-बार मेरे कानों में आ रही थी, "खबरदार, तेल नहीं लाए तो खाना नहीं बनाऊंगी। हां।"

शाम के लगभग सात बज गए। भूख के मारे मेरा पेट सिकुड़कर पीठ से चिपक गया। आखिर मेरी बारी आई। बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन सेठ जी ने मुझे पैसे व गैलन लिए बिना आदेश दिया, "आप एक मिनट रुकिए।"

उस वक्त मुझे गुस्सा तो बहुत आया लेकिन मैंने गुस्सा दबाकर बड़े प्रेम से कहा, "सेठ साहब, एक मिनट तो क्या, हम तो एक घंटा भी रुक सकते हैं।"

सेठ जी दुकान के अन्दर गये और एक सुन्दर सी [illegible] लाए और करीने से उनको तेल के ड्रम पर रखते हुए दुकान में घुसकर शटर बंद कर

लिया ।

मैं देखता ही रह गया । तख्ती पर लिखा था, "मिट्टी का तेल स्टाक में नहीं है ।"

मैं अपना-सा मुंह लेकर लौटने लगा तो, नवरंग म्यूजिक सेंटर से गाने की आ रही आवाज मेरे कानों में पड़ी, "सावन वालों सावन को लबाई मार गई…।"

का प्रयास कर रहा था।

दस बजे दुकान खुली। लाइन में हलचल हुई। सभी ने मोर्चा लिया। तेल बिकने लगा। मैं देख रहा था कि दुकानदार के कुछ जानकार लोग बिना लाइन के ही तेल लिए जा रहे हैं।

लाइन के बीच खड़े एक सरदार जी से यह देखा न गया तो वे बोले, "सेठ जी, तुसी आ की करदे हो। रब नू जान देणी है। असी भी लाइन विच खड़े हां!"

"ये लोग दो दिन से खड़े हैं, आपको पता है?" सेठ जी ने रौबदार आवाज में कहा।

सुनकर मेरा दिल बैठने लगा। दोपहर के दो बज गए। तभी एक व्यक्ति तेल लेकर अपने गैलन को उठाते हुए बोला, "सेठ जी, तेल पूरा पांच लीटर नहीं है, मुझे कम लगता है।"

सेठ जी माथे पर त्योरियां चढ़ाते हुए बोले, "अच्छा! तेल दे दिया इसलिए बोल रहे हो। लेना हो तो लो वरना अपना रास्ता नापो।"

वह व्यक्ति चुपचाप चला गया। कोई कुछ नहीं बोला। अब लाइन में खड़े लोग बैठने लगे। मैं भी बैठ गया। अकेला खड़ा रहकर क्या करता। कुछ लोग अपने-अपने टिफिन में से खाना निकालकर खाने लगे। मुझे भी जोरों की भूख लग रही थी। पर क्या करता? तेल ले जाना जरूरी था। श्रीमती जी की डांट बार-बार मेरे कानों में आ रही थी, "खबरदार, तेल नहीं लाए तो खाना नहीं बनाऊंगी। हां।"

शाम के लगभग सात बज गए। भूख के मारे मेरा पेट सिकुड़कर पीठ से चिपक गया। आखिर मेरी बारी आई। बड़ी प्रसन्नता हुई, लेकिन सेठ जी ने मुझसे पैसे व गैलन लिए बिना आदेश दिया, "आप एक मिनट रुकिए।"

उस वक्त मुझे गुस्सा तो बहुत आया लेकिन मैंने गुस्सा दबाकर बड़े प्रेम से कहा, "सेठ साहब, एक मिनट तो क्या, हम तो एक घंटा भी रुक सकते हैं।"

सेठ जी दुकान के अन्दर गये और एक मुड़ी-सी गड्डी लाए और करीने से उसको मेज के ऊपर रखते हुए दुकान में घुसकर शटर बंद कर

किरायेदार की पाती

मेरे पुराने मकान मालिक, नमस्कार। मैं यहां पर यानी कि इस नये मकान मे बडे मजे मे हू। आशा है आप भी अपने किरायेदारो के बीच मजे मे होंगे।आपके किसी भी किरायेदार ने शायद आज तक आपको कोई पत्र नही लिखा होगा। माफ करना, मै लिख रहा हू। एक बार तो पत्र लिखते हुए मैं डर रहा था। फिर सोचा कि आपके मकान मे तो रहता नही हू, जो नाराज होकर आप मुझे मकान खाली करने की धमकी देंगे और फिर इस जन्म मे आपको पत्र नही लिखूगा तो फिर कब लिखूगा ? बस, यही सोचते-सोचते मैंने पत्र लिखने की हिम्मत जुटाई है।

मेरे मकान मालिक यानी मेरा मतलब है मेरे पुराने मकान मालिक। क्यो, ये संबोधन बुरा तो नही लगा न ? क्या करू चाचा, ताऊ मामा, नाना, दादा तो आप बनते नही हो। आप हमेशा यही कहा करते थे, "मेरे साथ रिश्तेदारी मत जोडो। बस, मैं मकान मालिक और तुम किरायेदार।" मेरे पुराने मकान मालिक, आपने तो मुझे सिर्फ किरायेदार ही समझा। मुझे ही क्या, आप तो सभी को मात्र किरायेदार ही समझते थे। क्या किरायेदार आदमी नही होता ? कभी-कभी मुझे लगता है कि दुनिया बदल जाएगी, लेकिन आप नही बदलेंगे।

मेरे पुराने मकान मालिक, मैं आपके मकान के बाद अब बारह महीने से इस नये मकान मे रह रहा हू। वास्तव मे यहा बड़ी मौज है, यहां हमारे कमरे मे पानी का मटका पड़ा रहता है तो कोई ऐतराज नही करता। यह

मकान मालिक तो क्या मकान मालकिन भी नहीं कहती, "हमारा कमरा खराब होता है।" आखिर हम क्यों खराब करें किसी का कमरा ? नाम को रेडियो बजाना, खबरें सुनना और गाने के साथ गुनगुनाने की यहां कोई मनाही नहीं है। मेरे नये मकान मालिक बहुत अच्छे हैं।

मुझे अच्छी तरह याद है, आपके यहां कमरा मिलने की खुशी में मैंने अपने दोस्तों को एक अच्छी-सी पार्टी दी थी। उस दिन जब पार्टी की तैयारी के लिए मैं कमरे में खीर बना रहा था तो आपने कमरे के बाहर खीर बनाने का आदेश दिया था, "यहां अंदर खाना-वाना मत बनाओ। हमारा कमरा खराब होता है।" उस वक्त मैंने आपको कितना समझाया था कि साहब, स्टोव से कमरा खराब नहीं होता, लेकिन आप तो आप ही थे। अपनी जिद्द मनवाकर ही सांस ली। मैंने फिर भी सब्र किया।

जब मेरे दोस्त आए और उन्होंने मुझे कमरे के बाहर खीर बनाते हुए देखा तो एक दोस्त ने मुझ पर व्यंग्य करते हुए कह भी दिया था, "मित्र, मोहल्ले वालों को दिखा रहे हो क्या कि हम अपने दोस्तों को खीर खिला रहे हैं ? मेरे पुराने मकान मालिक, आपको ध्यान नहीं होगा, मैंने उस समय आपकी इज्जत रखने के लिए बहाना बनाया था कि अंदर गर्मी लग रही है, लेकिन आपको इतना तो याद होगा कि उस वक्त मौसम कड़ाके की सर्दी का था।"

यहां इस नये मकान में चाहे कहीं भी बैठकर खाना बनाओ। कमरा आज तक कहीं से खराब नहीं हुआ है। मेरे साथ पढ़ने वाले दोस्त भी यहां कभी-कभार आते रहते हैं, ये नये मकान मालिक कतई बुरा नहीं मानते। ये जानते हैं कि पढ़ने वाले लड़के के पास इसके साथी नहीं आएंगे तो और कौन आएगा ?

और उसी दिन यानी पार्टी वाले दिन आपने मेरे दोस्तों के सामने झगड़ा किया था। उस दिन बेवजह आपने मेरा तो अपमान किया ही, साथ ही मेरे दोस्तों का भी तो अपमान हुआ था। आपने तो झट से कह दिया था, "अपने सहपाठियों से कह देना, आइंदा यहां नहीं आएं। हमारे घर में बहू-बेटियां रहती हैं।"

मैंने कहा था, "बाऊ जी, आपके बहू-बेटियां हैं तो वे हमारी मां-बहिन

हैं,'''हम ऐसे-वैसे नही हैं जैसा कि आप सोच रहे है और फिर पार्टी कौन-सी रोज-रोज थोड़े ही होती है । आज आपका कमरा मिला । वस, इस खुशी मे थोडा-बहुत प्रोग्राम कर रहे है ।" मेरे इतना कहने के बाद आप चले तो गए थे, मगर पार्टी का मजा तो किरकिरा कर दिया था ना ।"

इस नए मकान मे कल ही मेरे जन्म-दिन पर मैंने पाच-सात दोस्तों को पार्टी दी थी, जिसमे स्वयं मकान मालिक, मकान मालकिन तथा उनके दोनों बच्चे भी शामिल थे । बड़ा मजा आया था पार्टी का । आप देखते तो जलभुनकर राख हो जाते ।

यहा इस नये मकान मे हँसने पर कोई पाबंदी नही है । यह नए मकान मालिक कहते हैं, "आदमी को खुलकर हँसना चाहिए क्योंकि खुलकर हँसने से मन की गाठे खुल जाती हैं । चेहरे पर रौनक आ जाती है । लेकिन आपके वहा की तो बात ही कुछ और है । एक दिन मैं रेडियो पर लतीफा सुनकर हँसा तो आपने तत्काल हँसने पर रोक लगाते हुए यह भी आदेश दिया था, "यहा भविष्य मे हँसना मना है ।" क्या मैं उसके बाद कभी हँसा था ?

यह बात मुझे इसलिए याद आ गई, क्योंकि कल पार्टी मे लतीफा सुनने पर मैं हँसा नही था जबकि और सब जोर-जोर से हँस रहे थे । मेरे पुराने मकान मालिक, मैं अब क्या करूं ? आपकी वह रौबदार आवाज और कमरा खाली करवाने की बात-बात पर दी गई धमकी मेरे दिल मे इस कदर समा गई है, जिसका प्रभाव कभी समाप्त होगा, मुझे विश्वास नही होता ।

यहा मेरा नया मकान मालिक, सभी किरायेदारों की बड़ी इज्जत करता है । उन्हे केवल मात्र किरायेदार नही बल्कि आदमी समझता है । यहा एडवास किराये का भी कोई चक्कर नही है । पिछले महीने मैं किराया नही दे सका तो इन्होंने आपकी तरह जिद नही की, कि किराया दे दो या मकान खाली कर दो ।

इस नये मकान मे सब किरायेदारों के पास अपनी-अपनी साइकिलें हैं और मकान मालिक के पास भी । यहा कोई मेरी साइकिल माग कर भी नहीं

ले जाना। आपके वहा तो कभी आप, कभी आपके लडके या अन्य किराए-दार साइकिल ले जाते और वो भी बिना पूछे ही, जैसे साइकिल उनके'''।

मुझे अच्छी तरह याद है कि आपके वहा एक बार पडौसी किरायेदार मेरी साइकिल की ट्यूब का 'पटाका' बुलवाकर ले आया और मुझसे बोला था, "दिनेश जी, क्या करू ? यह कमबख्त आपकी साइकिल ही खटारा है, जो हमेशा पक्चर ही रहती है।" मुझे उस समय बडा गुस्सा आया था, क्योंकि उस दिन आकाशवाणी मे मेरा 'लाइव प्रोग्राम' था और समय हो चुका था। मैं बडी मुश्किल से प्रकृति की बनाई इस ग्यारह नम्बर कार यानी पैदल दौडकर रेडियो स्टेशन पहुचा था। वह दिन मुझे हमेशा-हमेशा याद रहेगा। भला हो उस नुक्कड वाले खतरनाक झबरू कुत्ते का, जिसने मुझे सही समय पर रेडियो स्टेशन पहुचाकर ही दम लिया।

उस दिन मेरी और झबरू की दौड देखने वाली थी। इतना तेज तो मैं पांचवी कक्षा मे पढते समय हम सात लडको मे हुई दौड प्रतियोगिता मे भी नही दौडा था। फिर भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। मुझे काटने की कोशिश मे झबरू ने मेरी फुलपैंट को 'हाफपैंट' बना दिया, जो बतौर यादगार आज भी मैंने सभालकर रख रखी है। लेकिन झबरू के साथ हुई उस दौड प्रतियोगिता के बाद तो मुझे ऐसा लगा जैसे एशियाड दौड प्रतियोगिता मे अगर मै शामिल कर लिया जाता तो अवश्य ही स्वर्ण पदक जीत कर लाता।

यास्तव में मुझे इस नये मकान में रहते हुए बड़ी प्रसन्नता हो रही है। यहां पर कोई चुगली नही करता। चुगली कब करे और फिर करे कौन? जितने भी लोग हैं, क्या मकान मालिक और क्या किरायेदार, क्या बच्चे और क्या वृद्ध सबके सब अपने-अपने काम में इतने तल्लीन रहते हैं। यहां फालतू बातें करने का किसी के पास वक्त ही नही है।

आपके वहा तो आपकी मालकिन, मेरा मतलब है मेरी पुरानी मकान मालकिन और आपके किरायेदारो की पत्निया कितनी लडती थी। शुक्र है मैं तो तब अविवाहित था, नही तो न जाने उस समय मेरी पत्नी के साथ भी मकान मालकिन व अन्य किरायेदारो की पत्निया लडती रहती।

मेरे पुराने मकान मालिक, आपको तो पता है, मुझे अंधेरे मे सोने की आदत नही थी। इस कारण मैं रात को जीरो वाट का बल्ब जलाता था और आप थे कि जब तक मैं बल्ब बुझा न देता, तब तक इतना शोर मचाते कि पूरा मकान थरथरा उठता। ऐसा लगता जैसे मकान मे रेल का इजिन घुस आया है। आपकी उस दहाड के डर से मुझे मजबूरन अधेरे मे सोना पड़ता। क्या करता, आपके मकान का किरायेदार जो था। लेकिन इस नये मकान मे रात को जीरो वाट का बल्ब जलाने पर कोई एतराज नही करता।

मेरे पुराने मकान मालिक, बुरा मत मानना। आप किरायेदारो के लिए तो समस्या थे ही, देश के लिए भी कम समस्या नही हो। आपको ध्यान होगा—हमारे देश की सबसे बडी समस्या क्या है? पढते ही आप कह उठेंगे, 'महंगाई है।' लेकिन मैं कहता हू, देश की सबसे बडी समस्या है बढती हुई जनसख्या। इसी कारण तो महगाई है। जो मूलतः जनसख्या वृद्धि के कारण ही है और आपने इस जनसंख्या वृद्धि मे अपना अहम रोल अदा किया है। क्योकि जनसख्या वाले भी उस दिन सकते मे आ गए थे कि कही वे भूल से स्कूल मे तो नही आ गए है।

खर! छोड़िये इन बातो को। मैं आपके व्यक्तिगत कार्यों मे दखल-अदाजी करने वाला कौन होता हू? वैसे इस नये मकान मालिक के तो सिर्फ दो ही बच्चे हैं, जो आज देश की माग है। आपकी तरह ग्यारह-ग्यारह मूर्तिया नही हैं। यह मैं इसलिए लिख रहा हू क्योकि उन ग्यारह आज्ञाकारी

मकानों ने मुझे बड़ा दुखी किया था। कभी कोई मेरी [illegible] साईकिल ले जाता तो कभी साइकिल। उनके देखा-देखी आपका लड़का [illegible] वाला मुझसे दिन में कई बार साइकिल की माँग करता था कि 'अंकल जी मुझे भी साइकिल ला दो ना।' उस समय आपका [illegible] है मैं उसको साइकिल बनता था। वह लाडला (केवल आपका) मेरे कंधे पर बैठ जाता और तब तक नहीं उतरता, जब तक कि मैं उसे चौराहे वाली पान की दुकान तक नहीं ले जाता।

वहां पान की दुकान पर खड़े सभी लोग मुझे बड़ी मर्मान्त दृष्टि से देखते थे कि मैं सिर्फ आपके ही बच्चे क्यों खिलाता हूं। लेकिन मैंने उन लोगों की कोई परवाह नहीं की। खैर, छोड़िये पुरानी बातें का। गड़े मुर्दे उखाड़ने में फायदा भी क्या है।

वैसे आपको पत्र तो मैंने इसलिए लिखा है कि आप इसे पढ़कर अपने में कुछ परिवर्तन ले आओ। मेरे पुराने मकान मालिक, समय को समझो। जब तक आप अपने स्वभाव में परिवर्तन नहीं लाओगे, कभी भी सुखी नहीं रह सकोगे। मैंने आपको अपना समझकर ही यह छोटा-सा पत्र लिखा है, ताकि आपके मकान में आने वाले भावी किरायेदार सुख की सांस ले सकें और चैन से रह सकें।

आपका
एक पुराना किरायेदार

मैं उल्लू हूं

अजी, उल्लू के पट्ठों का जिक्र छोडिए। अपन तो खुद के बारे में ही बताते हैं कि हम उल्लू हैं और वह भी निरे काठ के। कितना ही अच्छा होता, यदि मैं लक्ष्मी जी का वाहन होता। तब दिन-रात चौबीसों घटे धनलक्ष्मी मेरे साथ रहती और मैं उसके साथ, लेकिन क्या करू, काठ का उल्लू हू ना, इस कारण धनलक्ष्मी तो क्या, गृहलक्ष्मी से भी पूर्णतया वचित हू।

यदि मैं आपसे कहू कि आप मूर्ख हैं, बुद्धू हैं, घोचू हैं, मतलबपरस्त हैं, भले ही आप उपर्युक्त गुणो से ओत-प्रोत हो, फिर भी निश्चित है आप मेरे कहे का बुरा मान जाएगे, लेकिन मैं कतई बुरा नही मानता। आप चाहे मुझे उल्लू कहकर देख लीजिए। वैसे भी उल्लू को उल्लू कहना गलत नही है।

मै उल्लू इसलिए हूं कि अपनी कोई भी बात दिल मे छिपाकर नही रखता। मेरी बातें सुनने वाला चाहे मेरा पक्का दुश्मन ही क्यो न हो, बोलता हू तो बस बोलता ही चला जाता हू। सुनने वाला थक जाता है, लेकिन मै नही थकता।

क्या करू, नौकरी-पेशे वाला आदमी हू। महीने के अंतिम दिन बडी कड़की मे गुजारता हूं। बिना उधार लिए काम नही चलता। अत अपनो से उधार लेकर काम चलाता हू। मैं मागना बुरा नही मानता। वे तो कबीर जी ही थे, जो कह गए—"मागन मरन समान है, मत कोई मागो भीख।" लेकिन जनाब, मैं कोई भीख नही मागता। उधार मागता हू और

उधार लेना मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है।

चूंकि मैं तो उधार के रूप में सिर्फ नोट ही मांगता हूं। लोग तो मार्किन, स्कूटर, फ्रिज, कूलर, टेलीविजन ही नहीं, बीवी तक उधार मांगने में नहीं हिचकिचाते। आप कहेंगे—कम्बख्त, खुली अदालत में हमारी निन्दा कर रहा है, लेकिन सत्य हमेशा कड़वा होता है, ये तो आप जानते ही हैं।

उधार के मामले में नेता लोगों का नजरिया कुछ और ही है। इन्हें नोट नहीं, वोट चाहिए और इसी वोट के लिए ये न जाने कितने हथकंडे अपनाते हैं। मैं इसके लिए अकेले किसी नेता का नाम क्यों लूं। नहीं तो कल को कोई कह उठेगा "मिस्टर शर्मा, आपने अपनी कड़की के बीच मुझे क्यों घसीटा?" दुनिया में न जाने कितने और नेता हैं। सबके मुखौटे अलग हैं तो क्या।' आईना तो एक ही है। किसी शायर ने ठीक ही कहा है कि—

जब एक ही उल्लू काफी है
बरबाद-ए-गुलिस्तां करने को,
हर शाख पे उल्लू बैठा है
अंजाम-ए-गुलिस्तां क्या होगा ?

खैर छोड़िए, राजनीति में फंसकर हमें लेना भी क्या है।

है। लगता है जब तक कोई उच्च पद प्राप्त न कर लू, कड़की यथावत् रहेगी।

अगर आप मेरे विचारों से सहमत हैं तो तुरत टेलीग्राम मनीआर्डर भेजने का श्रम करें ताकि मैं भी धूम-धड़ाके के साथ दीवाली का ये पर्व मना सकू। संपादक महोदय को तो कहने की भी आवश्यकता नहीं है। ये तो व्यंग्य छापते ही पारिश्रमिक भेज देंगे।

ध्यान रहे, मैं सहानुभूति का आदी नहीं हूं। हा, इतना और बता दू कि यदि आपने मुझे मनीआर्डर भेज दिया तो मैं जीवन-भर आपका ऋणी रहूंगा।

□□

दीनदयाल शर्मा

जन्म : चैत्र सुदी 3, वि० स० 2016, गांव : जसाना (नोहर), जिला : श्रीगंगानगर (राज०)

शिक्षा : एम० कॉम० (व्यावसायिक प्रशासन), पत्रकारिता एवं पुस्तकालय-विज्ञान में डिप्लोमा।

लेखन : गत एक दशक तक पत्रकारिता से जुड़ा रहा। साथ ही साहित्य की विभिन्न विधाओं में पत्र-पत्रिकाओं में लेखन तथा आकाशवाणी से प्रसारित।

सम्पादन : नई शिक्षा की नई कहानियां, स्वप्न सुंदरी, गुलमोहर तथा संविद्।

प्रसारण : फैसला (नाटक), मास्टर फकीरचंद (हास्य नाटिका), सिंधु घाटी की समकालीन सभ्यता : कालीबंगा (रूपक)।

कृतियां : चिटू-पिटू की सूझ, बडों के बचपन की कहानियां तथा फैसला (सभी बाल साहित्य)

प्रकाश्य : मामला गडबड़ है (व्यंग्य), कुत्ता आदमी है ! (सम्पा० व्यंग्य संग्रह), शंखेश्वर के सोग।

सम्प्रति : पुस्तकालयाध्यक्ष
राजकीय माध्यमिक विद्यालय
हनुमानगढ़ संगम-335512 (राज०)

मैं उल्लू हूं

दीनदयाल शर्मा